ISSN: 2583-1860

शोध-चिंतन पत्रिका

विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका

संपादक

डॉ. रीतामणि वैश्य

वर्ष:4; अंक: 7; जुलाई-दिसंबर,2023

http://shodhchintanpatrika.neglimpse.com

MADE WITH: EDIT.ORG

शोध- चिंतन पत्रिका

विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका

संपादक

डॉ. रीतामणि वैश्य

E-ISSN: 2583-1860

वर्ष:4; अंक: 7; जुलाई-दिसंबर,2023

प्रकाशक : NEGLIMPSE

E-ISSN: 2583-1860

संपर्क सूत्र :

ई-मेइल : **shodhchintan@gmail.com**

मोबाइल नं. 8135054304

8486316810

9435116133

7002272818

संरक्षक

डॉ. किरण हाजरिका
अध्यक्ष, टेङाखात महाविद्यालय
डिब्रुगड़

डॉ. अमूल्य वर्मण
पूर्व विभागाध्यक्ष तथा सहयोगी प्राध्यापक
हिंदी विभाग, कॉटन कॉलेज

परामर्श मंडल

प्रो. एइच सुबदनी देवी
हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय

प्रो. दिनेश कुमार चौबे
हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पहाड़ीय विश्वविद्यालय

प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. नारायण चंद्र तालुकदार
पूर्व विभागाध्यक्ष तथा सहयोगी प्राध्यापकहिंदी
विभाग, कॉटन महाविद्यालय

डॉ. अच्युत शर्मा
भूतपूर्व सहयोगी प्राध्यापक
हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

प्रो. रवीन्द्रनाथ मिश्र
हिन्दी विभाग, विश्व भारती विश्वविद्यालय

डॉ. पवन कुमार
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, गवमेंट डिग्री कॉलेज ऑफ भैंसा

डॉ. माक्सीम देमचेन्को
सहयोगी अध्यापक, मॉस्को स्टेट लिंग्विस्टिक
विश्वविद्यालय, मॉस्को (रूस)

प्रो. निरंजन कुमार
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

डॉ. राहुल मिश्र
प्राध्यापक, हिंदी
केंद्रीय बौद्ध विद्या संस्थान (मानद विश्वविद्यालय)

डॉ. गोलोक चंद्र डेका
सहायक अध्यापक
हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय

डॉ. लेखा एम.
सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग, एन एस एस हिंदू महाविद्यालय

संपादक

डॉ. रीतामणि वैश्य
सह आचार्य, हिंदी विभाग, गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी, असम
rita1@gauhati.ac.in
9101452787, 9435116133
Profile Link: https://www.gauhati.ac.in/academic/arts/hindi

संपादक मंडल

प्रो. जय कौशल
आचार्य, हिंदी विभाग
असम विश्वविद्यालय (दीफू परिसर), असम
jai.kaushal@aus.ac.in
9612091397

डॉ. चुकी भूटिया
सह आचार्य, हिंदी विभाग, काजीरोड,
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, सिक्किम,737102
cbhutia01@cus.ac.in
9064224852

डॉ. प्रीति वैश्य
सह आचार्य, हिंदी विभाग
प्रागज्योतिष महाविद्यालय, गुवाहाटी,
pritibaishya @pragiyotishcollege.ac.in
781009 9678885119

डॉ. मिलन रानी जमातिया
आचार्य, हिंदी विभाग
त्रिपुरा विश्वविद्यालय, सूर्यमणि नगर, अगरतला,
त्रिपुरा वेस्ट, 799022
milanrani08@tripurauniv.ac.in
8974009245

प्रो. पूनम कुमारी
आचार्य,हिंदी / भारतीय भाषा केंद्र, जे. एन. यू.
punamkumari@mail.jnu.ac.in

डॉ. फिल्मेका मारबानियांग
सह आचार्य
हिंदी विभाग, सेंट एन्थोनीज कॉलेज
शिलांग, मेघालय
fmarbaniang12@anthonys.ac.in
9436302106

डॉ जोरम बानिया ताना
सह आचार्य
हिंदी विभाग, देरानातुंग गवर्मेंट कॉलेज
इटानगर, अरुणाचल प्रदेश
aniya@dngc.ac.in
7005147047

संपादकीय

लोककथा की कथा : पूर्वोत्तर संदर्भ

लोक में प्रचलित प्राचीन कथा लोककथा कही जाती है। लोककथा का कोई लेखक नहीं होता, वह किसी मानव- समुदाय की साझी अभिव्यक्ति होती है। उसमें एक समाज के विश्वास,परंपरा, संस्कार,संस्कृति आदि कई पहलू समाहित होते हैं और होते जाते हैं। समय और कथाकार के बदलने से कथा में भी बदलाव आता रहता है। लोककथा में कुछ न कुछ संदेश अवश्य रहता है, जो उस समाज के अनुभव का निचोड़ होता है।लोककथा की विशेषता यह भी है कि एक ही कथा संदर्भ और अंचल भेद से अनेक रूप ग्रहण करती है।

भारत जैसे बहुभाषीय देश में लोककथाओं का प्राचुर्य है। लिपिहीन भाषाओं की लोककथाएँ किसी दूसरी लिपि की मुहताज बनी हुयी हैं या समय के साथ विलुप्त होती जा रही हैं। भारत की अनेक भाषाएँ विलुप्ति के कगार पर हैं। भाषाओं की विलुप्ति के साथ उस भाषा का लोक साहित्य भी विलुप्त हो जाता है। पूर्वोत्तर भारत में यह बड़ी समस्या बनाकर सामने आई है। यहाँ डेढ़ सौ से भी अधिक भाषाएँ हैं। असम की असमीया भाषा की लिपि असमीया है तथा मणिपुर की मणिपुरी भाषा की लिपि मैतै मायेक है। बाकी भाषाओं की लिपि नहीं है। असमीया और मणिपुरी के अतिरिक्त पूर्वोत्तर भारत की तीसरी भाषा बड़ो है, जिसे भारत के संविधान की आठवीं सूची में स्वीकृति दी गयी है। बड़ो की अपनी लिपि नहीं है और संविधान ने उसे देवनागरी लिपि में लिखने का प्रावधान दिया है। इनके अलावा बाकी भाषाओं का साहित्य अधिकतर मौखिक रूप में उपलब्ध है। पूर्वोत्तर के विविध समुदायों के शिक्षित लोग अपने समुदायों के लोक साहित्य को संरक्षित करने में निरंतर प्रयासरत हैं, पर इसके लिए उन्हें कई चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

पूर्वोत्तर की लोककथाओं के संकलन का काम मूलतः अँग्रेजी में शुरू हुआ। अंग्रेज जिस दृष्टि से भारत को, खासकर पूर्वोत्तर को देखते थे, उसी दृष्टि को आधार बनाकर यहाँ की लोककथाओं का संकलन किया। परवर्ती समय में लोककथा के भारतीय संकलकों ने भी उन्हीं ग्रन्थों को आधार बनाया। परिणामस्वरूप सौतेली माँ का अत्याचार, नर शिकार, मूँद आखेट आदि से संबन्धित कई

वीभत्स और भयानक लोककथाओं का प्रचलन हुआ। और इन लोककथों के आधार पर पूर्वोत्तर को लेकर एक ऐसी धारणा बनी,जिसने इस क्षेत्र की गलत छवि प्रस्तुत की।

पूर्वोत्तर भारत की लोककथाओं के पुनरलेखन की आवश्यकता है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद ने माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के लिए पूर्वोत्तर भारत की लोककथाओं को अतिरिक्त पठन सामग्री के रूप में संयोजित करने का प्रस्ताव लिया है। पूर्वोत्तर की लोककथाओं के साथ न्याय करने के उद्देश्य से पूर्वोत्तर के विद्वानों से संकलन का काम किया गया है और यह काम सम्पन्न भी हो गया है।

डॉ. रीतामणि वैश्य

संपादक

शोध-चिंतन पत्रिका

वर्ष:4; अंक: 7; जुलाई-दिसंबर,2023

इस अंक में

	आलेख	नाम	पृष्ठ संख्या
1	श्रीलंका में महापंडित राहुल सांकृत्यायन का जीवन	नीता सुभाषिणी सेनेविरत्न	1-13
2	नव जनसंचार माध्यमों में हिन्दी की वर्तमान स्थिति और भविष्य में संभावनाएँ	अरशदा रिज़वी	14-26
3	भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री का महत्व	ज्योति	27-36
4	हिंदी गीतिकाव्य परंपरा और 'सजल' : एक अन्वेषण	कृष्ण कुमार यादव 'कनक'	37-51
5	होमेन बरगोहाञि कृत 'साउदर पुतेके नाओ मेलि याय' उपन्यास में मनोविज्ञान : एक समीक्षात्मक अध्ययन	डॉ. करबी भूञाँ	52-63
6	ग्रामीण स्त्री जीवन के संदर्भ में शिवमूर्ति की कहानियाँ	प्रिय साहू	64-72
7	भारत में महिला आंदोलन की भूमिका	रूबी मणि दास	73-81

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका

अंक:7; जुलाई-दिसंबर, 2023; पृष्ठ संख्या : 01-13

श्रीलंका में महापंडित राहुल सांकृत्यायन का जीवन

नीता सुभाषिणी सेनेविरत्न

शोध-सार :

महापंडित राहुल सांकृत्यायन आधुनिक हिंदी साहित्य जगत के एक अहम व्यक्तित्व हैं। हिंदी के यात्रा साहित्य को उनका असीम योगदान है। यह सारा यात्रा साहित्य उनकी घुमक्कड़ी प्रवृत्ति के कारण ही लिखा जा सका। देश-विदेश के अलग-अलग भू-भागों की यात्रा करने में उन्होंने बहुत जोखिम भी उठाये हैं। दुर्गम अँचलों की यात्रा करने में भी वे हिचकिचाते नहीं थे। इस क्रम में वे श्रीलंका भी गए। संस्कृत पढ़ाने के आमंत्रण पर वे श्रीलंका गए, पर इसके पीछे श्रीलंका में पालि भाषा और साहित्य की अध्ययन की सुविधा भी एक बहुत बड़ा कारण था। विद्यालंकार परिवेण जब विद्यालंकार विश्वविद्यालय बना तब वे वहाँ दर्शनशास्त्र विभाग के अध्यक्ष और दर्शनशास्त्र महचार्य के रूप में उनकी नियुक्ति ससम्मान हुई। राहुल जी ने अपने साहित्यिक जीवन की शुरुआत भी श्रीलंका में ही की थी। यही उन्होंने बहुत से ग्रंथों की रचना की। पालि भाषा के माध्यम से वे बौद्ध धर्म और साहित्य का अध्ययन करने लगे। त्रिपिटक का उन्होंने गहन अध्ययन किया और उन्हें 'त्रिपिटकाचार्य' की उपाधि भी दी गई। बौद्ध धर्म से वे इतने प्रभावित हुए कि बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए। सन् 1927 ई. में उन्होंने श्रीलंका पहली बार पदार्पण किया था और सन् 1961 ई. को वे हमेशा के लिए श्रीलंका से विदा लेकर भारत आए।

बीज-शब्द : *घुमक्कड़, राहुल सांकृत्यायन, विद्यालंकार परिवेण, त्रिपिटक, श्रीलंका*

प्रस्तावना :

महापंडित राहुल सांकृत्यायन बीसवीं शती के हिंदी साहित्य के विशिष्ट हस्ताक्षर हैं तथा हिंदी यात्रा साहित्य के पितामह कहलाते हैं। उनके जीवन का मूलमंत्र ही घुमक्कड़ी रही है। अपनी यायावरी प्रवृत्ति के कारण उन्हें विश्व के सर्वश्रेष्ठ पर्यटकों में गिना जाता है। राहुल सांकृत्यायन ने अपने जीवन में घुमक्कड़ी को सर्वोपरि माना तथा उनके लिए घुमक्कड़ी ही जीवन का सर्वश्रेष्ठ धर्म बन

गया था । उन्होंने घुमक्कड़ी को समाज और देश के हित के साथ-साथ व्यक्तिगत हित के लिए भी आवश्यक माना । उनके व्यक्तित्व की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उनकी यही यायावरी प्रवृत्ति रही । इसी घुमक्कड़ी के कारण उन्होंने देश-विदेश की अनेक साहसिक एवं स्तब्धकारी यात्राएँ कीं । राहुल ने अपनी जिज्ञासु तथा घुमक्कड़ प्रवृत्ति के कारण केवल पूरे भारत में ही नहीं,अपितु नेपाल, तिब्बत, श्रीलंका, रूस, इंग्लैंड, यूरोप, जापान, कॉरिया, मॉस्कवु, मंचूरिया, ईरान, चीन आदि अनेक देश-देशांतरों की यात्रा की ।

विश्लेषण :

लद्दाख यात्रा के उपरांत उनमें बौद्ध धर्म के अध्ययन की तीव्र इच्छा जागृत हुई थी । बौद्ध धर्म की ओर उनकी दिलचस्पी इतनी बढ़ी कि उन्होंने श्रीलंका पहुँचकर बौद्ध धर्म का अध्ययन करने का निश्चय कर लिया । सारनाथ के भिक्षु श्रीनिवास ने राहुल के संबंध में भिक्षु नाराविल धर्मरत्न को लिख दिया था, जो पहले कॅलणिय विद्यालंकार परिवेण के छात्र थे तथा भारत के लिए प्रचारक बनने की तैयारी कर रहे थे । संयोगवश श्रीलंका के कॅलणिय विद्यालंकार परिवेण को एक संस्कृत अध्यापक की आवश्यकता पड़ी । अत: विद्यालंकार परिवेण ने भिक्षु नाराविल धर्मरत्न से किसी संस्कृत पंडित को भेजने के लिए आग्रह किया था । जब नाराविल धर्मरत्न ने राहुल से वेतन के बारे में पूछा तो उनका उत्तर था –

> मुझे वेतन की आवश्यकता नहीं, खाना, कपड़ा और पुस्तकें मिलनी चाहिए और सबसे जरूरी बात पालि पढ़ने का अच्छा प्रबंध । (सांकृत्यायन 2018:15)

इस बात का नाराविल धर्मरत्न ने पूरा आश्वासन दिया तथा उसी वक्त विद्यालंकार को उन्होंने तार भेजा और वहाँ से सौ रूपये मार्ग व्यय के लिए प्राप्त हो गये । राहुल अपनी अलफी उतारकर और श्वेत धोती, कुर्ता, चादर के साथ पंडित का वेश धारण करके 16 मई 1927 ई. को

श्रीलंका के कॅलणिय विद्यालंकार परिवेण पहुँचे जो भिक्षुओं का विद्यालय था तथा वहाँ के अध्यापक सभी भिक्षु ही थे।

श्रीलंका पहुँचते ही, वहाँ के लोगों द्वारा वैशाख पूर्णिमा के लिए की गयी सजावट देखने पर राहुल को इतने दिनों से सुनते आते बौद्ध के नाम में अब एक विचित्र प्रकार का आकर्षण, एक अद्भूत माधुर्य, एक विशेष आत्मीयता मालूम होती थी। विद्यालंकार परिवेण में राहुल को 'जंबूद्वीप के ब्राह्मण पंडित' के रूप में अत्यंत आत्मीयता के साथ स्वागत किया गया। परिवेण के प्रधान लुणुपोकुने श्री धर्मानंद नायक महास्थविर का व्यवहार राहुल को अत्यधिक आत्मीयतापूर्ण लगा। विद्यालंकार परिवेण के नायकपाद महास्थविर श्री धर्मानंद राहुल के शारीरिक आराम का बहुत ध्यान रखते थे और उनको अफसोस होता था कि राहुल सिंहली भोजन बहुत कम रुचि से खाते थे। इसका कारण राहुल ही बताते हैं –

> दरअसल वहाँ के भोजनों में लाल मिर्च और मसाले की अत्यधिकता मेरे बर्दाश्त के बाहर की चीज थी। कभी-कभी मेरी रुचि के अनुसार मछली बनायी जाती थी, लेकिन अधिकतर मैं मक्खन, दूध, पावरोटी, उबले आलू, प्याज और तर्कारियों पर गुजारा करता था। (सांकृत्यायन 2018:23)

विद्यालंकार परिवेण में राहुल का मुख्य ध्यान इस बात पर केंद्रित था कि विद्यार्थी क्या पढ़ना चाहते हैं तथा स्वयं अपने पालि अध्ययन का काम कैसे चलेगा। विद्यालंकार परिवेण में केवल प्रारंभिक श्रेणी को छोड़कर उससे ऊपर के प्राय: सभी विद्यार्थी तथा अध्यापक संस्कृत पढ़ते थे। यहाँ संस्कृत पढ़ाने का जो क्रम था, वह बिलकुल उत्तर भारत के पंडितों का सा पुराना था। आरंभ से ही व्याकरण रटाने की प्रवृत्ति को छोड़कर राहुल ने ऐसे नये क्रम से पाठ पढ़ाने का निश्चय किया ताकि थोड़े परिश्रम और अल्प समय से विद्यार्थी अपनी सार्थकता प्राप्त करने में आत्मविश्वास बढ़ा सकें। इस नये क्रम के अनुसार पढ़ाते हुए राहुल द्वारा भाषा और व्याकरण से संबंधित चार पुस्तकें तथा

छंद-अलंकार से संबंधित एक पुस्तक की रचना की गयी। इस प्रकार लंका के निवास काल में राहुल ने अध्ययन-अध्यापन कार्य में अत्यंत परिश्रम किया। आठ-नौ घंटे खाने-सोने-टहलने में बाकी पाँच घंटे पढ़ने में और आठ-नौ घंटे अपनी पढ़ाई के लिए निश्चित थे।

राहुल का प्रमुख उद्देश्य पालि पढ़ने का था, जिसकी समुचित व्यवस्था यहाँ थी। कॉलम्बो का विद्योदय परिवेण एवं केलणिय का विद्यालंकार परिवेण लंका में भिक्षुओं के दो प्रधान शिक्षा केंद्र थे और दोनों की स्थापना पालि त्रिपिटक के अध्ययन के उद्देश्य से की गयी थी। विद्यालंकार परिवेण के प्रधान श्री धर्मानंद महास्थविर स्वयं पालि व्याकरण के अच्छे विद्वान थे। इस प्रकार राहुल को लंका में पालि अध्ययन के लिए अनुकूल वातावरण मिला। संस्कृत के अत्यंत सन्निकट होने के कारण राहुल के लिए पालि सीखना अधिक आसान था। उन्होंने सुत्त पिटक से अपना अध्ययन प्रारंभ किया। नायक महास्थविर, आचार्य प्रज्ञासागर, आचार्य देवानंद, आचार्य प्रज्ञालोक हर एक से राहुल एक से दो घंटे अध्ययन किया करते थे। पालि त्रिपिटक के अंतर्गत बुद्धकालीन भारतीय समाज, राजनीति, इतिहास एवं भूगोल आदि विभिन्न विषयों के तथ्य अंतर्गत थे, जिसने उनकी ऐतिहासिक जिज्ञासा को और भी बढ़ा दिया। वे भौगोलिक, ऐतिहासिक बातों पर निशान करके उन्हें नोटबुक में उतारते जाते थे। राहुल ने लिखा है –

> उस समय विचार था कि त्रिपिटक और अट्ठकथाओं में प्राप्य ऐतिहासिक और भौगोलिक सामग्री पर एक ग्रंथ लिखूँ। इसी खयाल से लंका में रहते ही मैंने श्रावस्ती-जेतवन पर एक परिच्छेद लिख भी डाला, जो कि काशी-विद्यापीठ की त्रिमासिक पत्रिका 'विद्यापीठ' में निकल रहा है।
>
> (सांकृत्यायन 1952:प्राक्कथन)

राहुल के इन्हीं नोटों के आधार पर सन् 1930 ई. में उन्होंने 'बुद्धचर्या' नामक ग्रंथ की रचना की। इसके प्राक्कथन में राहुल ने कहा है –

> भगवान बुद्ध की जीवनी और उपदेश दोनों ही इस ग्रंथ में सन्निविष्ट हैं। बुद्ध की जीवन-घटनाएँ पालि त्रिपिटक में जहाँ-तहाँ विखरी हुई हैं, मैंने उन्हें यहाँ संग्रह किया है। साथ ही रिक्त को अट्ठकथाओं से पूरा कर दिया है। (सांकृत्यायन 1952:प्राक्कथन)

ग्रंथ की भूमिका में भारत में बौद्ध धर्म के उत्थान और पतन का वर्णन भी किया गया है।

राहुल हर रविवार को सिलोन शाखीय रॉयल एशियाटिक सॉसाइटी के पुस्तकालय में पढ़ने कॉलम्बो जाते थे। परंतु बाद में वहाँ के पुस्तकालय के ग्रंथ, श्री डी.बी. जयतिलक की कृपा से उनके पास विद्यालंकार परिवेण में पहुँचने लगे । श्री डी.बी. जयतिलक विद्यालंकार के अधिपति श्री धर्माराम के शिष्य थे। अत: परिवेण के साथ उनकी बड़ी आत्मीयता थी। राहुल ने पालि टेक्स्ट सॉसाइटी (लंदन) के द्वारा निकाली जाने वाली पत्रिकाओं के पुराने अंकों को पढ़ लिया। इसके अलावा उन्होंने बौद्ध धर्म से संबंधित अन्य पत्रिकाओं का भी पारायण किया। उस समय राहुल ने भारतीय पुरालिपियों का गहन अध्ययन किया और 'एपिग्राफिका इंडिका' की सारी जिल्दें छान डालीं। उन्हीं दिनों जर्मनी के प्रोफेसर रुडॉल्फ ओटो विद्यालंकार पहुँचे और राहुल से उनकी बातचीत हुई। उन्हें यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि राहुल कभी किसी विश्वविद्यालय के विद्यार्थी नहीं रहे।

लंकावास के समय ईश्वर संबंधी राहुल के विचारों में एक बड़ा परिवर्तन परिलक्षित होने लगा। उन्होंने लिखा है –

> मैंने पहिले पहिल कोशिश की ईश्वर और बुद्ध दोनों को साथ ले चलने की, किंतु उस पर पग-पग पर आपत्तियाँ बढ़ने लगीं।...ईश्वर और बुद्ध साथ नहीं रह सकते, यह साफ हो गया और यह भी स्पष्ट मामूल होने लगा कि ईश्वर सिर्फ काल्पनिक चीज है, बुद्ध यथार्थवक्ता है।...अब मुझे डार्विन के

> विकासवाद की सच्चाई मालूम होने लगी, अब मार्क्सवाद की सच्चाई हृदय और मस्तिष्क में पैवस्ता जान पड़ने लगी। (सांकृत्यायन 1952:19-20)

आर्य समाज के प्रति राहुल की जो रुचि थी, वह अब क्रमश: बौद्ध धर्म एवं साम्यवाद के प्रति बढ़ने लगी। गहन और व्यापक अध्ययन ने उनमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण पैदा कर दिया। इस प्रकार श्रीलंका निवास ने उनके ईश्वर विश्वास को समाप्त कर दिया था।

श्रीलंका के निवास के दौरान राहुल को यहाँ के कई स्थानों की यात्रा करने का भी अवसर प्राप्त हुआ। उनमें से अनुराधपुर, पोलोन्नरुव, सेरुवाविल, कतरगम, जफना आदि स्थान विशेष उल्लेखनीय हैं। राहुल को राजेंद्र बाबू का यह पत्र मिला कि वे दिसंबर 1927 की मद्रास-कांग्रेस के बाद श्रीलंका देखना चाहते हैं। अतएव राहुल ने उन्हें श्रीलंका के दर्शनीय स्थानों को देखने का प्रबंध किया। श्रीलंका-निवास के उन्हीं दिनों में राहुल ने श्रीलंका के संबंध में धारावाहिक रूप से 'सरस्वती' (मासिक), 'विश्वमित्र' (दैनिक) एवं 'मिलाप' (रोजाना) आदि पत्रों में लेख लिखे। लंका में रहते समय उन्हें यह पता नहीं था कि ये लेख भारत में कितने लोकप्रिय हो रहे हैं। बाद में उनके लिखे वे लेख 'लंका' नामक पुस्तक बन गये। इस पुस्तक में लंका के प्रमुख नगरों, स्थानों, नदियों और धार्मिक स्थलों का रोचक वर्णन किया गया है। राहुल जी के मित्र आनंद जी बताते हैं –

> प्रति शनिवार को किसी न किसी भारतीय पत्र के लिए लेख लिखना उनका नियम था। रात के बारह बजे लेख की लिखाई समाप्त हो जाती, तो उसी समय उसे लिफाफे में बंद करके पास के डाकखाने में डाल आते। (मुले 1993:38)

वास्तव में राहुल के साहित्यिक जीवन का आरंभ श्रीलंका में ही हुआ था। राहुल ने लिखा है –

एक तरह 1927 ई. में ही मेरे साहित्यिक जीवन का आरंभ होता है ।

(सांकृत्यायन 2018:23)

उन्हीं दिनों उन्होंने फ्रेंच तथा तिब्बती भाषाएँ भी पढ़ना आरंभ किया था। लंकावास में ही राहुल ने फ्रांसीसी अनुवाद से 'अभिधर्मकोश' के खंडित अंशों को पूरा किया । इस प्रकार यह दृष्टिगत होता है कि राहुल एक ही कार्य क्षेत्र या विचार धारा से कभी बँधकर नहीं रहे। उन्होंने श्रीलंकावास का अपना अधिकांश समय सुत्त, विनय, अभिधम्म इन तीन पिटकों के अनुशीलन को दिया तथा उन पर असामान्य अधिकार प्राप्त किया, जिनके लिए विद्यालंकार परिवेण ने उन्हें तीन सितंबर 1928 ई. को 'त्रिपिटकाचार्य' की उपाधि से अलंकृत किया। त्रिपिटकाचार्य की उपाधि त्रिपिटक में व्युत्पन्न मेधावी विद्वानों को दी जाती है। इन पिटकों के अध्ययन से उन पर बौद्ध दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा। परंतु राहुल मात्र इससे ही संतुष्ट नहीं हुए। उनका विचार था कि जब तक त्रिपिटक के अलावा संस्कृत बौद्ध साहित्य का अध्ययन न किया जाये, तब तक बौद्ध धर्म तथा दर्शन की जानकारी अधूरी ही रह जाती है। इसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि लगभग सारा संस्कृत बौद्ध वाङ्मय भारत से लुप्त हो चुका था। अब तक राहुल को इतनी जानकारी तो प्राप्त हो गई थी कि तिब्बती एवं चीनी अनुवादों में काफी बौद्ध साहित्य सुरक्षित है । तिब्बत में मूल संस्कृत पोथियों के भी मिलने की काफी संभावना थी। अब आगे राहुल जी का प्रमुख ध्येय इसी संस्कृत बौद्ध साहित्य का अन्वेषण करना था । अतएव उन्होंने तिब्बत जाने का निर्णय किया । इसी कारणवश वे उस समय भिक्षु नहीं बने, परंतु उनके दीर्घकालीन मित्र ब्रह्मचारी विश्वनाथ फरवरी 1928 ई. में प्रव्रजित होकर श्रामणेर बने और बौद्ध भिक्षु बनने पर उनका नया नाम हुआ आनंद कौसल्यायन।

भदंत आनंद को विद्यालंकार परिवेण में ही छोड़कर 01 दिसंबर, 1928 ई. को राहुल भारत के लिए प्रस्थान हो रहे थे, तो नायकपाद श्री धर्मानंद महास्थविर अधिक चिंतित हुए । वास्तव में यह भारत के लिए नहीं, तिब्बत के लिए प्रस्थान होना था। उन्होंने पालि त्रिपिटक और

दूसरी बहुत-सी पुस्तकें लंका में जमा कर ली थीं, जिन्हें रेलवे से पटना भेज दिया। राहुल ने 19 महीनों में केवल पालि त्रिपिटक तक का ही अध्ययन नहीं किया, बल्कि भारत, लंका की पुरातत्त्व की रिपोर्टों, हिंदुस्तान और विदेशों की इतिहास-संबंधी-अनुसंधान-पत्रिकाओं का विधिवत पारायण भी किया था। राहुल ने अपने अध्ययन कार्य की प्रगति का विवरण इस प्रकार किया है –

> मैं जिस वक्त लंका आया था, उस वक्त पालि को सिर्फ छूआ-भर था, संस्कृत को मैंने अच्छी तरह पढ़ा था, लेकिन पुरातत्त्व, पुरालिपि और इतिहास की मौलिक सामग्री का मेरा अध्ययन नहीं के बराबर था। अब इन चीजों का मुझे काफी ज्ञान था। (सांकृत्यायन 2018:26)

इसके उपरांत राहुल 20 जून 1930 ई. को श्रीलंका के विद्यालंकार परिवेण वापस लौट आये। उन्होंने एक तरह से बौद्ध भिक्षु (लामा) के वेश में ही तिब्बत की यात्रा की थी। परंतु श्रीलंका वापस लौटने पर अब उन्हें विधिवत भिक्षु बनना था, जिसमें प्रव्रजित होकर पहले श्रामणेर बनना पड़ता है और तदनंतर उपसम्पदा का बड़ा आयोजन होता है। श्रीलंका पहुँचने के दो दिन बाद, 22 जून 1930 ई. को, विद्यालंकार विहार में नायकपाद धर्मानंद महास्थविर के उपाध्यायत्व में राहुल (रामोदार साधु) की प्रव्रज्या हुई। बौद्ध भिक्षु बनते समय नाम परिवर्तन की परंपरा है। तिब्बत की प्रथम यात्रा के पहले उन्होंने अपने 'सांकृत्य' गोत्र के आधार पर अपने को 'रामोदार सांकृत्यायन' बना लिया था। अब प्रव्रज्या के कुछ मिनट पहले नये नाम का प्रस्ताव आया। राहुल स्वयं लिखते हैं –

> नाम शायद एकाध और पेश किए गए थे, किंतु मैंने रामोदार के 'रा' की साम्यता के देखते हुए राहुल नाम का प्रस्ताव किया और वह स्वीकृत हुआ। इस प्रकार राहुल सांकृत्यायन नाम से मैं प्रव्रजित (श्रामणेर) हुआ। (सांकृत्यायन 2018:77)

राहुल अब श्रामणेर के काषाय वस्त्रों में थे, 37 साल के हो चुके थे। दस दिन बाद 2 जुलाई (1930 ई.) को श्रीलंका के मनोरम कांडी शहर के प्रसिद्ध मलवतु विहार में आयोजित एक भव्य समारोह में राहुल की उपसम्पदा हुई। वे लिखते हैं –

> वैसे भी लंका के गृहस्थों और भिक्षुओं में मेरी खासी इज्जत थी, किंतु भिक्षुसंघ में शामिल हो जाने पर वह सम्मान कई गुणा बढ़ गया था। (सांकृत्यायन 2018:78)

आगे राहुल अध्यापन-कार्य करने के साथ-साथ एक नई पुस्तक लिखने में जुट गये। उन्हीं के शब्दों में–

> मैंने हिंदी में बुद्ध की जीवनी लिखने में हाथ लगाया। अपने शब्दों में स्वतंत्र जीवनी लिखने की अपेक्षा मैंने पसंद किया कि वह त्रिपिटक से संग्रह कर उसी के शब्दों में हो, ताकि लोग त्रिपिटक की ऐतिहासिक, भौगोलिक सामग्री का लाभ उठाते हुए बुद्ध के जीवन को पढ़ें और स्वतंत्र निर्णय करें। पढ़ते वक्त लिये नोटों से मुझे सामग्री जुटाने में बड़ी आसानी हुई और इस प्रकार मैंने बड़ी तेज गति से 'बुद्धचर्या' लिखने का काम शुरू किया। (सांकृत्यायन 2018:78)

'बुद्धचर्या' एक अनूठा ग्रंथ है। पालि त्रिपिटक में जहाँ-जहाँ बुद्ध की जीवनी और उपदेश के बारे में जो विपुल सामग्री बिखरी हुई है, उसका इस ग्रंथ में संचय हुआ है। इसमें राहुल ने त्रिपिटक की भौगोलिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और राजनीतिक सामग्रियों को भी एकत्र कर दिया है।

तिब्बत से लायी गई पुस्तकें, चित्रपट आदि सारी सामग्रियाँ विद्यालंकार परिवेण पहुँचीं, तो उन्हें व्यवस्थित करके संभालकर रख दिया गया। इस समय भारत में सत्याग्रह आंदोलन चल रहा था। राहुल और आनंद, दोनों ही उसमें अपना योगदान आवश्यक समझते थे। अत: आनंद पहले ही

भारत चले गए। राहुल नायकपाद से बड़ी मुश्किल से अनुमति प्राप्त करके 15 दिसंबर 1930 ई. को भारत पहुँचे। इसके उपरांत इंग्लैंड और यूरोप की यात्रा 1932 ई.से लौटने के बाद जनवरी 1933 ई. में करीब पंद्रह दिन वे विद्यालंकार में रहे थे।

श्रीलंका के जिस विद्यालंकार परिवेण में राहुल ने अध्यापन तथा अध्ययन का काम किया, वह परिवेण जून 1959 ई.में विश्वविद्यालय के रूप में स्थापित हुई। विद्यालंकार विश्वविद्यालय ने राहुल से दर्शनशास्त्र के विभाग को संभालने का अनुरोध किया था तो उन्होंने स्वीकार कर लिया। सितंबर 1959 ई.में राहुल जी पुन: विद्यालंकार पहुँचे। श्रीलंका के विद्यालंकार विश्वविद्यालय में दर्शनशास्त्र विभाग के अध्यक्ष तथा दर्शनशास्त्र महाचार्य के पद पर राहुल जी की नियुक्ति हुई।

राहुल सिंहली भाषा थोड़ी-बहुत शायद समझ लेते थे, परंतु उन्होंने सिंहली में बोलने का अभ्यास नहीं किया। विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम सिंहली भाषा थी। अतएव राहुल के व्याख्यानों को सिंहली में प्रस्तुत करने की व्यवस्था हुई। राहुल दर्शन और न्यायशास्त्र विषयक अपने भाषण संस्कृत में देते थे और सिंहली विभाग के महाचार्य महास्थविर प्रज्ञाकीर्ति उनके अनुवादक बनकर बैठते और जो कुछ राहुल जी संस्कृत में कहते उसका वे सिंहली में अनुवाद करके विद्यार्थियों को समझाते थे। महास्थविर प्रज्ञाकीर्ति 1928-29 ई. में राहुल के विद्यार्थी रहे थे। राहुल के न्यायशास्त्र संबंधी भाषणों के लिए प्रज्ञाकीर्ति ने सिंहली में जो 'नोट' तैयार किए थे, वे बाद में पुस्तकाकार प्रकाशित हुए।

राहुल के उन दिनों की जीवन-चर्या के बारे में आनंद बताते हैं –

> यहाँ रहते समय राहुल जी की साहित्य-रचना का कार्य बराबर जारी था।
>
> राहुल जी को अपने 'व्याख्यान' की तैयारी करते कभी किसी ने नहीं देखा।
>
> वे बैठे-बैठे पुस्तक लिखते रहते। विश्वविद्यालय की घंटी बजती। वे उठकर

पढ़ाने चले जाते। लौटकर आते, तो फिर कलम हाथ में ले लेते । (मुले 1993:181)

राहुल ने विद्यालंकार विश्वविद्यालय में पढ़ाने के साथ-साथ अपना लेखन कार्य भी किया । 'तिब्बती हिंदी कोश' तैयार करने में उन्होंने बहुत परिश्रम किया । किंतु यह कोश उनके जीवनकाल में नहीं छप सका । 'पालि काव्यधारा' के लिए विद्यालंकार में स्रोत-ग्रंथ सहज उपलब्ध थे, अतएव राहुल ने उसे वहीं पर लिखना उचित समझा । इसे साहित्य एकादेमी ने प्रकाशन के लिए स्वीकार किया था, परंतु यह ग्रंथ अंतत: वहाँ से नहीं छप सका, और अब तक अप्रकाशित है । इसके अनंतर राहुल ने 'पालि साहित्य का इतिहास' भी लिखना आरंभ किया । यह ग्रंथ उत्तर प्रदेश की हिंदी समिति से राहुल जी के देहांत के कुछ समय के बाद प्रकाशित हुआ । श्रीलंका के निवास-काल में ही राहुल ने 'सिंहल के वीर पुरुष' नामक एक और पुस्तक लिखी।

जाड़े की छुट्टियों में जया-जेता और पत्नी कमला सांकृत्यायन दो बार श्रीलंका पहुँचे तो राहुल भी विश्वविद्यालय की गर्मियों की छुट्टियों में कुछ महीने दार्जिलिङ् जाकर रहे । दार्जिलिङ-निवास के दौरान घुमक्कड़ जयवर्धन से राहुल की भेंट हुई । उनके जीवन चरित्र के नोट लेकर राहुल ने 'घुमक्कड़ जयवर्धन' पुस्तक लिख डाली । उल्लेखनीय बात यह है कि राहुल श्रीलंका में प्राय: हरदिन जया-जेता को एक पत्र लिखा करते थे ।

सन् 1960 ई. के उत्तरार्ध से राहुल की स्मृति कुछ क्षीण होने लगी थी । स्मृति क्षीण होने की शिकायत उन्होंने कुछ पत्रों में की है । सन् 1961 ई. के आरंभिक महीनों के जाड़ों में जया-जेता और पत्नी पुन: श्रीलंका में थे । राहुल चाहते थे कि वे सब उनके साथ श्रीलंका में रहें, लेकिन बच्चों की माँ ने साफ इनकार कर दिया । फरवरी 1961 ई. में बच्चे भारत वापस चले गए, तो राहुल ने पुन: लिखने का काम आरंभ किया । मगर अब उनका स्वास्थ्य पर्याप्त बिगड़ चुका था । शरीर ही नहीं,

स्मृति भी ठीक से साथ नहीं दे रही थी। जया-जेता के पास उनका लौटना उचित समझा गया। अत: 31 मार्च, 1961 ई. को वे दार्जिलिङ पहुँच गये। आगे जुलाई के आरंभ तक, पूरे तीन महीने, राहुल दार्जिलिङ में ही रहे। उस दौरान राहुल प्राय: हर तीसरे-चौथे दिन अपने हाथ से आनंद को चिट्ठियाँ लिखा करते थे।

जुलाई 1961 ई. के दूसरे सप्ताह राहुल जी पुन: अकेले ही श्रीलंका पहुँचे। वहाँ वे केवल एक महीना ही रह पाए। हृदयरोग और तीव्र मधुमेह ने राहुल के जीवन को अत्यंत दुर्वह बना दिया था। 19 अगस्त, सन् 1961 ई. में 68 वर्ष की अवस्था में उन्होंने श्रीलंका से अंतिम विदाई ली।

निष्कर्ष :

राहुल सांकृत्यायन में घुमक्कड़ी प्रवृत्ति अपने चरम पर थी। उन्होंने देश-विदेश के अनेकों जगहों का भ्रमण किया। अपनी घुमक्कड़ी प्रवृत्ति के वशवर्ती होकर वे श्रीलंका भी गए। हालाँकि, श्रीलंका वे संस्कृत पढ़ाने के लिए आमंत्रित किए जाने पर गए थे। परंतु उनकी घुमक्कड़ी प्रवृत्ति के कारण ही वहाँ उनका जाना संभव हुआ। श्रीलंका जाने के पीछे पालि भाषा और साहित्य सीखने की उनकी इच्छा भी एक कारण था। पालि भाषा के माध्यम से उन्होंने बौद्ध धर्म और साहित्य का अध्ययन किया और इतने प्रभावित हुए कि खुद बौद्ध बन गए। उन्होंने अपने जीवन का एक लंबा समय श्रीलंका में बिताया।

ग्रंथसूची :

आनंद, खेलचंद. कथाकार राहुल सांकृत्यायन. दिल्ली: शारदा प्रकाशन, 1973.

तिवारी, उदयशंकर. राहुल कथा साहित्य . इलाहाबाद: राका प्रकाशन, 1994.

पांडे, गोविंद चंद्र. राहुल कथा साहित्य . इलाहाबाद: राका प्रकाशन, 1994.

भारती, कँवल. राहुल सांकृत्यायन और डॉ. आम्बेडकर- तीन अध्ययन. प्रथम संस्करण. फरीदाबाद: साहित्य उपक्रम, 2007.

मिश्र, प्रभाकर. राहुल सांकृत्यायन का कथा साहित्य. प्रथम संस्करण . नई दिल्ली: अशोक प्रकाशन, 1997.

मुले, गुणाकर. महापंडित राहुल सांकृत्यायन : जीवन और कृतित्व. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, 1993.

विद्यार्थी, प्रभु नारायण. राहुल सांकृत्यायन अनछुए प्रसंग . पटना: बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2000.

सांकृत्यायन, राहुल. बुद्ध-चर्या. द्वितीय संस्करण . सारनाथ: महाबोधि सभा, 1952.

—. मेरी जीवनयात्रा-2. पाँचवाँ संस्करण. दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन, 2018.

संपर्क-सूत्र : हिंदी अध्ययन विभाग

कॅलणिय विश्वविद्यालय,श्रीलंका

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका

अंक:7; जुलाई-दिसंबर, 2023; पृष्ठ संख्या : 14-26

नव-जनसंचार माध्यमों में हिन्दी की वर्तमान स्थिति और भविष्य में संभावनाएँ

अरशदा रिज़वी

शोध-सार :

मनुष्य प्राचीन काल से ही अपनी भावनाओं तथा वैचारिक मन्तव्यों को समाज में प्रेषित करने हेतु विभिन्न माध्यमों का सहारा लेता आया है। आरंभ में वह चित्रों के माध्यम से, फिर मुद्रित माध्यमों से और अब जनसंचार माध्यमों से अपने भावों को दुनिया में प्रसारित कर रहा है। वर्तमान युग नव जनसंचार माध्यमों का युग है। इसमें अखबार, टीवी, रेडियो, फेसबुक, ट्विटर, यूट्यूब, इंस्टाग्राम और न जाने कितने ही संचार माध्यम विकसित हुए जिन्होंने सूचना एवं तकनीकी के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न की है। हिंदी भाषा को इनसे बहुत ही प्रोत्साहन मिला है। हिंदी का प्रचार-प्रसार बढ़ाकर उसे नवीन प्रगतिमय पथ प्रदान करने में इन नवीन माध्यमों की महत्वपूर्ण भूमिका है। पहले जहाँ पुस्तकालयों तथा पुस्तकों तक ही यह ज्ञान समाहित रहता था,आज विश्व के कोने-कोने तक प्रसारित हो रहा है। नितप्रति बढ़ते इन नवीन जनसंचार माध्यमों से हिंदी का भविष्य सुनहरे होने की सभावनाएँ दिखाई दे रही हैं। विश्व में हिन्दी भाषा तथा हिंदी साहित्य को इन्होंने बढ़ाया है तथा आगे भी इसे प्रसारित करने में इन माध्यमों से आशा की जा सकती है।

बीज शब्द : *संचार, मीडिया, सामाजिक माध्यम,हिन्दी*

प्रस्तावना :

संचार मानव उत्पत्ति के समय से ही एक सतत प्रक्रिया है। इसका रूप चाहे जैसा भी रहा हो परंतु मनुष्य ने अपने विचारों को दूसरों तक संप्रेषित करने के लिए अलग-अलग तरीके अपनाए हैं। संचार चाहे मौखिक हो, लिखित हो या सांकेतिक हो - मनुष्य हर माध्यम से अपने विचारों को एक दूसरे तक पहुंचा रहा है। संचार विचारों तथा अभिवृत्तियों को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक संप्रेषित करने की कला का ही नाम है। वहीं,दूसरी ओर जनसंचार (मास कम्युनिकेशन) व्यापक

अवधारणा है। आज यह एक प्रभावशाली प्रौद्योगिकी बनकर उभरी है। इस प्रौद्योगिकी ने सारी दुनिया को बदल कर रख दिया है।

विश्लेषण :

व्युत्पत्ति की दृष्टि से 'जनसंचार' शब्द 'संचार' में 'जन' के योग से बना है। संचार सीमित अर्थ का वाचक भी हो सकता है, लेकिन 'जन' इसमें जुड़कर इसको व्यापक बना देता है।

> जब संचार की प्रक्रिया सामूहिक पैमाने पर व्यापक स्तर पर होती है तब वह जनसंचार कहलाता है। (मोहन 2005 :17)

जन संचार की अवधारणा वास्तव में आधुनिक युग की देन है। वर्तमान औद्योगिक एवं तकनीकी विकास ने इसे सुदृढ़ आधार प्रदान किया है। यह संचार प्रक्रिया औद्योगिक समाज की देन है ; क्योंकि यह पूरी तरह तकनीकी तथा संस्था पर आधारित है। रेडियो टीवी का समस्त जन संचार माध्यम मीडिया है। यह अंग्रेजी भाषा के मीडियम का बहुवचन है।

> अभिव्यक्ति माध्यमों का समाहार ही मीडिया है, जिसका कार्य जल समूहों के बीच सूचना संचार है। विद्युत तरंग या मुद्रित सभी जनसंचार के माध्यम मीडिया कहलाते हैं। (तिवारी 2019:13)

अतः कहा जा सकता है कि समाचार, मत, विचार एवं कथन को जन-जन तक संप्रेषित करने का साधन ही मीडिया है। मीडिया केवल विचारों को ही जनसमूह तक नहीं पहुँचाता है, बल्कि लोगों को समाज में व्याप्त अलग-अलग धारणाओं तथा ताज़ातरीन समाचारों के प्रति जागरूक करने का प्रयास करता है।

पुराने तथा नए जनसंचार माध्यम :

औद्योगिक विकास के फलस्वरूप कुछ जनसंचार माध्यमों का प्रचलन हुआ था जिन्हें वर्तमान समय में पुराने जनसंचार माध्यम या ओल्ड मीडिया कहा जाने लगा है। इन माध्यमों के

अंतर्गत रेडियो, टीवी और दूसरे मुद्रित माध्यम जैसे किताबें और मैगज़ीन आदि आते हैं। समय निरंतर परिवर्तनशील है। जब से नई-नई तकनीकों का आविष्कार हुआ है, तब से नए-नए जनसंचार के माध्यम उभरकर सामने आए हैं। एक समय था जब सीडी या डीवीडी आदि फिल्में देखने का सबसे नया माध्यम थीं,परंतु अब इनकी जगह नेटफ्लिक्स और प्राइम वीडियो ने ले ली है। जैसे-जैसे समय ने रफ्तार पकड़ी है, विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरुप हर एक क्षेत्र में लोगों को रोज़ कुछ नया प्राप्त होता जा रहा है। उसी प्रकार जनसंचार के भी नए-नए माध्यम सामने आ रहे हैं, जिन्हें नए जनसंचार माध्यम या न्यू मीडिया कहा जा रहा है। न्यू मीडिया के अंतर्गत जो माध्यम आ रहे हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं –

1.वेबसाइट

2.ब्लॉग्स

3.ईमेल

4. सामाजिक मीडिया नेटवर्क (social media network)

5. संगीत और टेलीविजन स्ट्रीमिंग सेवाएँ

6. आभासी और संवर्धित वास्तविकता (Virtual and augmented reality)

कोरोना के समय में भी लोगों के लिए न्यू मीडिया वरदान साबित हुआ है। इन सब माध्यमों के द्वारा व्यक्ति अपने समय का सदुपयोग कर पाए हैं । कोरोना के समय में आभासी माध्यमों (virtual media) के द्वारा घर पर बैठकर ही लोगों ने अपने बहुत-से महत्वपूर्ण कार्यों को पूरा कर अपने समय का समुचित उपयोग किया है। इस कारण न्यू मीडिया हर क्षेत्र में अपनी अलग भूमिका निभाकर जीवन को आसान बना रहा है।

हिंदी भाषा और न्यू मीडिया :

भाषा किसी भी व्यक्ति के विचारों को दूसरों तक पहुंचाने का माध्यम है –

> भाषा नदी की धारा की तरह चंचल है वह रुकना नहीं जानती यदि कोई इसे बलपूर्वक रोकना भी चाहे तो यह भाषा उसके बंधन को तोड़ कर आगे निकल जाती है, यह उसकी संभावित प्रकृति और प्रवृत्ति है। हर देश की भाषा के इतिहास में ऐसी बातें देखी जाती हैं। (प्रसाद 1993:3)

डॉ. भोलानाथ तिवारी के मतानुसार मोटे तौर पर 1000 ई. के आसपास विविध अपभ्रंशों से विविध आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास हुआ। हिन्दी का विकास भी शौरसेनी, अर्धमागधी और मागधी अपभ्रंशों से 1000 ई. के आसपास हुआ। 14 सितम्बर, 1949 ई. को संविधान सभा ने यह निर्णय लिया कि हिन्दी केन्द्र सरकार की आधिकारिक भाषा होगी। तब से ही भारतीय संघ की राजभाषा के रूप में हिंदी आज सारे देश की भाषा है।

हिंदी एक जीवित, सशक्त और सरल भाषा है जिसके कारण इसका व्यवहार देश के कोने-कोने में हो रहा है। मुद्रण कला के बाद भाषा और साहित्य मुद्रित होकर आगे प्रसारित होने लगा। स्वतन्त्रता-पूर्व से ही बहुत से विद्वानों ने अलग-अलग जनसंचार माध्यमों के द्वारा हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए महत्वपूर्ण प्रयत्न किये। अलग-अलग समाचार पत्र निकाले जिससे हिंदी का परिवर्द्धन हो सके। पुराने जनसंचार माध्यम जैसे समाचार-पत्र, टेलीविज़न, रेडियो और पाठ्यपुस्तकें आदि ने हिन्दी के प्रचार प्रसार में बहुत अच्छी भूमिका निभाई। परंतु 1990 ई. के बाद इंटरनेट के आविष्कार ने पुराने जनसंचार माध्यमों की नींव को हिलाकर रख दिया तथा न्यू मीडिया का दौर शुरू हुआ। अतः आज के इन नए जनसंचार माध्यमों के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना वर्तमान समय की ज़रूरत बन गई है। प्रश्न यह उठता है कि क्या ये नए जनसंचार माध्यम हिन्दी के विकास में सहायता कर रहे हैं या नहीं ? और अगर कर भी रहे हैं तो ये उसको किसी प्रकार से नुक़सान तो नहीं पहुँचा रहे हैं?

आज के नए जनसंचार माध्यमों के द्वारा भी हर एक विषय एवं क्षेत्र के प्रचार-प्रसार के नए मार्ग खुल रहे हैं, जिससे उनकी स्थिति निरंतर परिवर्तित हो रही है । हिन्दी भाषा और साहित्य में ये किस प्रकार कारगर हुए हैं; उनका विवरण निम्नलिखित है।

हिंदी की प्रमुख वेबसाइट और उनमें उसकी स्थिति :

> एक वेबसाइट (Website) सार्वजनिक रूप से इंटरनेट पर उपलब्ध वेब पेजों और संबंधित सामग्री का एक संग्रह है जिसे एक सामान्य डोमेन नाम (Domain Name) से पहचाना जाता है और कम से कम एक वेब सर्वर पर प्रकाशित किया जाता है ।

(https://hi.m.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B5%E0%A5%87%E0%A4%AC%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%87%E0%A4%9F)

हिंदी के क्षेत्र में काम करने वाली बहुत सारी वेबसाइट हैं, जो लगातार हिंदी को परिवर्धित और परिष्कृत करने में योगदान दे रही हैं । कविता कोश, हिंदी समय, हिन्दी साहित्य, हिन्दीश्री, अभिव्यक्ति, अनुभूति, गद्यकोश,गीत पहल, साहित्यकुंज,समयांतर,हिंदी चेतना आदि वेबसाइट के माध्यम से हिंदी साहित्य और भाषा जनमानस के मध्य पहुँच रही हैं। ये तथा इन जैसी हज़ारों वेबसाइट के माध्यम से साहित्य सस्ते तथा सरल रूप में लोगों के बीच उपलब्ध हो रहा है।जहां बहुत सारी ऐसी वेबसाइट हैं जो शुद्ध हिंदी साहित्य को साहित्य प्रेमियों के समक्ष रख रही हैं वहीं कुछ ऐसी भी वेबसाइट हैं जो हिंदी के मानक स्वरूप को विकृत कर रही हैं। जिन पर प्राप्त अध्ययन-सामग्री कहीं से भी पढ़ने योग्य नहीं होती, क्योंकि इनमें केवल अशुद्धियां ही विद्यमान रहती हैं। परंतु जहां न्यू मीडिया में एक ऐसी ख़राब तस्वीर दिखाई देती है,तो वहीं दूसरी और ये हिंदी को वैश्विक स्तर पर मंच प्रदान करती हैं। न्यू मीडिया के माध्यम से कहीं भी किसी भी देश में बैठा हुआ व्यक्ति हिंदी तथा उसके साहित्य और व्याकरण से परिचित हो सकता है।

ब्लॉग्स में हिन्दी की स्थिति :

ब्लॉग्स कुछ और नहीं बल्कि वेबसाइट हीहैं,जहाँ पर लोग अपने विचार अनुभव और जानकारी आदि मूलपाठ (टेक्स्ट), छवि (इमेज) और वीडियो के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं। संक्षेप में, लेख आदि लिखकर लोगों को बताना ब्लॉगिंग कहलाता है। हिंदी ब्लॉगर्स की सबसे बड़ी समस्या यह है कि तकनीकी ज्ञान की कमी के कारण कंटेंट उच्च कोटि का होते हुए भी, आम जनमानस तक अपनी पहुँच नहीं बना पाते हैं और रद्दी कंटेंट लोगों का मतिभ्रष्ट करता हुआ दिखाई देता है। अभी जो हिंदी के ब्लॉगस उपलब्ध हैं ,वे केवल व्यावसायिक हैं। जिनके लिए हिंदी भाषा मात्र अभिव्यक्ति का माध्यम है। वह अपनी भाषा को अंग्रेजी के रूप में देखना पसंद करते हैं क्योंकि इंटरनेट उपभोक्ता हिन्दी से सम्बन्धित परिणाम भी रोमन लिपि में खोजते हैं। जैसे- Hindi kaise sikhen, Hindi varnmala charts with words, what is a computer in Hindi……। सर्च इंजन भी रोमन लिपि को ही अच्छी तरह समझता है तथा बेहतर परिणाम देता है। देवनागरी में टाइपिंग करना अब भी टेढ़ी खीर है क्योंकि देवनागरी में टाइपिंग काफ़ी दिनों बाद आयी और तब तक रोमन का काफ़ी प्रचार हो चुका था। इस कारण भी लोग रोमन में लिखना पसन्द करते हैं। यह समस्या तो हिन्दी तकनीकी के प्रचार-प्रसार से ही ख़त्म हो सकेगी।

सामाजिक माध्यमों (सोशल मीडिया) में हिन्दी की स्थिति :

सामाजिक माध्यम की एक परिभाषा निम्नलिखित है -

> सामाजिक माध्यम या सोशल मीडिया से आशय पारस्परिक संबंध के लिए अंतर्जाल या अन्य माध्यमों द्वारा निर्मित आभासी समूहों से है।
>
> यह व्यक्तियों और समुदायों के साझा, सहभागी बनाने का माध्यम है।
>
> इसका उपयोग सामाजिक संबंध के अलावा उपयोगकर्ता सामग्री के संशोधन के लिए उच्च पारस्परिक मंच बनाने के लिए मोबाइल और वेब आधारित प्रौद्योगिकियों के प्रयोग के रूप में भी देखा जा सकता है।

(https://hi.m.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%9C%E0%A4%BF%E0%A4%95_%E0%A4%AE%E0%A5%80%E0%A4%A1%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE)

सामाजिक मीडिया का इस बदलते हुए दौर में एक क्रांति की तरह प्रस्फुटन हुआ –

> यह नया माध्यम अंत:क्रियात्मक है, आपसी संवाद संभव बनाता है। अब जब यह डेस्कटॉप कंप्यूटरों, लैपटॉपों से निकल कर मोबाइल फोन पर आ गया है तो सर्वव्यापी, सर्वसमय, सर्वत्र और सर्वसुलभ हो गया है।

(https://www-jagran com.cdn.ampproject.org/v/s/www.jagran.com/lite/editorial/apnibaat-social-media-and-hindi 14693905.html?amp_gsa=1&amp_js_v=a9&usqp=mq331AQIUAKwASCAAgM%3D#amp_tf=From%20%251%24s&aoh=16934659766280&referrer=https%3A%2F%2Fwww.google.com&ampshare=https%3A%2F%2Fwww.jagran.com%2Feditorial%2Fapnibaat-social-media-and-hindi-14693905.html)

आरम्भ में सोशल मीडिया प्लेटफार्मों की भाषा अंग्रेजी ही थी, ऐसे में उपभोक्ता अपनी बात को हिंदी में कहने में संकोच महसूस करता था, वो टूटी-फूटी और ग़लत अंग्रेजी में अपनी बात कहने की कोशिश करता था। लेकिन अब समय बदल रहा है। हिंदी भाषा ने स्वाभाविक तौर पर सोशल मीडिया में अपनी जगह बनाई है, क्योंकि ज़्यादातर भारतीय उपभोक्ताओं का अंग्रेज़ी में हाथ तंग ही होता है।ऐसे में लोगों को धीरे-धीरे रोमन लिपि में लिखकर ही पोस्ट करना पड़ता था। इससे सोशल मीडिया को समझ में आया कि हिंदी भाषा में लिखने के विकल्प की बेहद जरूरत है। यही

वजह रही कि कई विदेशी सोशल मीडिया के माध्यमों को भी हिंदी भाषी उपभोक्ताओं के लिए इस विकल्प के रूप में लाना पड़ा।

हिंदी के न्यूज़ पोर्टल्स, वीडियो पोर्टल्स और हिंदी के यूट्यूब चैनल को भी इस श्रेणी में मानकर हिंदी को बल देने के उपक्रमों के तौर पर देखा जा सकता है।

इसके बाद हिंदी के एक बड़े बाज़ार का उदय हुआ। अब देख सकते हैं कि फ़ेसबुक, ट्विटर से लेकर गूगल और इंस्टाग्राम में भी हिंदी में लिखा जा सकता है, पोस्ट किया जा सकता है और उपभोक्ताओं की तरफ़ से भी लिखने के लिए हिंदी का चयन किया जा रहा है।

सबसे ख़ास बात है कि कोरोना काल में फेसबुक-इंस्टाग्राम पर किए गए लाइव सेशन और वेबिनार भी हिंदी में आयोजित हुए थे । ज़ूम और गूगल मीट पर साहित्य जगत की कई चर्चाएँ और विमर्श हिंदी में हो रहे हैं। इन्होंने कोराना काल में एक बेहतरीन भूमिका निभाई। जब संसार कोरोना की दहशत के बीच थम सा गया था, सभी अपने घरों में क़ैद हो गए थे, कोई कहीं न आ सकता था, न जा सकता था, ऐसे में इन सामाजिक माध्यमों ने लोगों को एक दूसरे से जोड़ा जिससे नए-नए विचार उत्पन्न हुए जिन्होंने अलग-अलग क्षेत्रों में प्रगति के रास्ते खोले। लोग इन सोशल प्लेटफ़ार्मों के माध्यम से जुड़ पाए तथा अपने विचारों को संसार के समक्ष रखने में सक्षम बन पाए।

फ़ेसबुक पर तो कई ऐसे युवा लेखक और कवि हैं जिन्होंने हिंदी में ही लिखकर अपनी पहचान बनाई। फ़ेसबुक और ट्विटर पर तो हिंदी एक क्रांति के तौर पर उभरकर सामने आई है। कुल मिलाकर सोशल मीडिया को उपभोक्ताओं की जरूरत थी और उपभोक्ताओं को हिंदी में लिखने की सुविधा और विकल्प की। ऐसे में सोशल मीडिया से हिंदी भाषा को निश्चित रूप से ताक़त मिली है। ज़ाहिर है कि संप्रेषण के लिहाज़ से हिंदी भाषा की ताक़त भविष्य में भी बढ़ती जाएगी, ऐसी उम्मीद तो की ही जा सकती है।

हिंदी ही नहीं संसार की अधिकांश भाषा पर सोशल मीडिया का प्रभाव पड़ रहा है । इन भाषाओं पर पड़ने वाले प्रभाव को जानने और समझने की लगातार कोशिश की जा रही है । इस पर लगातार विमर्श किया जा रहा है। सोशल मीडिया जैसे नए माध्यम ने हर भाषा के प्रयोग के तौर-

तरीकों, शब्दकोश (शब्दावली), शैली, उसके व्याकरण, व्याकरण की शुद्धता और वाक्य रचना को प्रभावित किया है। यह असर केवल लिखित ही नहीं बल्कि मौखिक भाषा पर भी दिखाई दे रहा है। हर एक नए जनसंचार माध्यम को देखकर यही कहा जाता रहा है कि इसने पुराने मानदंडों को ख़त्म कर दिया है लेकिन यह पूर्णत: सही नहीं है। ई-मेल ने प्राचीन पत्र व्यवहार के तरीके में बदलाव किया तो आज एसएमएस, ट्विटर, व्हाट्सएप, फेसबुक आदि ने ई-मेल की परंपरा को कुछ हद तक सीमित कर दिया है। भाषा और शब्दों के सौंदर्य की चिंता करने वाले इस बात को लेकर भी चिंतित हैं कि बदलते हुए ये परिदृश्य हिंदी भाषा को विकृत ना कर दे । एक प्रश्न यह भी उठता है कि आने वाली पीढ़ी के लिए क्या एक सशक्त, प्रभावी, संप्रेषण-योग्य, भाषा बची भी रहेगी या नहीं?

सोशल मीडिया के इन माध्यमों से खतरा यह भी है कि मोबाइल और इंटरनेट की दुनिया पाठ्य पुस्तकों का अस्तित्व ख़त्म न कर दे क्योंकि पाठ्य पुस्तकों में गंभीर विचारपूर्ण लेखन रहता है। अगर इनकी नींव कमजोर होती है तो आने वाली पीढ़ियां एक अच्छी, गंभीर, विचार–विमर्श चिंतन वाली भाषा से दूर हो जाएंगी एवं उनकी बौद्धिक क्षमता ठीक से विकसित नहीं हो पाएगी।

ई-पुस्तकालय में हिन्दी की स्थिति :

विकीपीडिया पर ई-पुस्तक की परिभाषा देते हुए कहा गया है –

> ई-पुस्तक (इलेक्ट्रॉनिक पुस्तक) का अर्थ है - डिजिटल रूप में पुस्तक। ई-पुस्तकें काग़ज़ की बजाय डिजिटल संचिका के रूप में होती हैं जिन्हें कंप्यूटर, मोबाइल एवं अन्य डिजिटल यंत्रों पर पढ़ा जा सकता है। इन्हें इंटरनेट पर भी छापा, बाँटा या पढ़ा जा सकता है।

(https://hi.m.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%88-%E0%A4%AA%E0%A5%81%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A4%95)

जब किसी वेबसाइट पर इनका संग्रह किया जाता है तो उसे ई-पुस्तकालय कहा जाता है। ये पुस्तकें कई तरह की होती हैं जिनमें पी॰डी॰ऍफ़॰, जी॰आई॰एफ॰ तथा टेक्सट आदि शामिल हैं, इनमें पी॰डी॰ऍफ़॰ सर्वाधिक प्रचलित फॉर्मेट है। पारंपरिक किताबों और पुस्तकालयों के स्थान पर सुप्रसिद्ध उपन्यासों और पुस्तकों के नए रूप जैसे ऑडियो पुस्तकें, मोबाइल टेलीफ़ोन पुस्तकें, ई-पुस्तकें आदि उपलब्ध हो रही हैं । हिंदी भाषा और साहित्य से सम्बधित कुछ ई-पुस्तकों के लिए वेबसाइट हैं जिनमें ई-पुस्तकालय(https://epustakalay.com), https://44books-com तथा https://books.google.com आदि प्रमुख हैं, जो हिन्दी भाषा की ही नहीं अपितु अन्य विषयों की ई-पुस्तकें भी मुद्रित कर उनको सर्वसुलभ बना रहे हैं। हिन्दी भाषा, व्याकरण और साहित्य से जुड़ी पुरानी तथा नई पाठ्यपुस्तकें इन पर उपलब्ध हो रही हैं तथा साहित्य प्रेमियों का मार्गदर्शन कर रही हैं।

निष्कर्ष :

न्यू मीडिया के क्षेत्र में भविष्य में हिन्दी की काफी संभावनाएँ हैं । उपर्युक्त घटकों के अध्ययन से एक बात तो सामने आती है कि न्यू मीडिया का भविष्य उज्ज्वल होगा, क्योंकि नए उपकरण उभरेंगे, उपभोक्ता नई मांग करेंगे, और प्रौद्योगिकियों की गुणवत्ता और पहुंच में सुधार होगा। न्यू मीडिया एक नया बढ़ता हुआ माध्यम है। इसके फायदे, संभावनाएँ और दायरे अपार हैं। हर एक क्षेत्र के लिए यह माध्यम एक नया तोहफ़ा लेकर आया है। आपको बस इसे सही तरीक़े से इस्तेमाल करने की ज़रूरत है। भारत सरकार भी डिजिटल इंडिया अभियान पर ज़ोर दे रही है। प्रौद्योगिकी का उचित उपयोग निश्चित रूप से अपने उपयोगकर्ताओं के लिए बहुत मददगार साबित होगा। हिंदी भाषा तथा उसके साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए निकट भविष्य में इसके प्रयोग से बहुत सारी संभावनाएं रूप लेती नज़र आती हैं। वे कहां तक सफ़ल होती है, यह तो वक्त ही बताएगा।

हिंदी के लिए न्यू मीडिया को सफ़ल बनाने हेतु ऑनलाइन डिग्री सम्बन्धित कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाने चाहिए, जिनसे सिखकर हिंदी भाषा और साहित्य के विकास में योगदान दिया जा सके।

जब तक हिंदी में कार्य करने वालों में तकनीकी ज्ञान की कमी होगी,तब तक वे अपने अनोखे विचारों अपने आविष्कारों को मूर्त रूप नहीं दे पाएँगे । अगर इन्हें भी पूर्ण सुविधाएँ मिलेंगी, तो हिन्दी भी एक अच्छी स्थिति पर पहुँच पाएगी।नई प्रौद्योगिकी नवाचार, नए व्यवसाय के अवसर प्रदान करेगी तो हिंदी के क्षेत्र में अलग-अलग सभावनाएं पैदा होंगी। अनुवाद के क्षेत्र में अपार संभावनाएँ हैं।न्यू मीडिया की यह एक विशेषता इसकी ताकत बनी हुई है कि सोशल मीडिया के ज़रिए छोटी से छोटी बात भी लोगों तक आसानी से पहुंच जाती है। न्यू मीडिया एक ऐसा प्लेटफॉर्म है, जिसकी मदद से किसी भी जानकारी को एक जगह से दूसरी जगह आसानी से ट्रांसफर किया जा सकता है। अत: हिंदी के संवर्द्धन एवं विकास के लिए जब भी प्रचार-प्रसार की आवश्यकता होगी तो न्यू मीडिया के साधन सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभायेंगे । न्यू मीडिया की सबसे अच्छी बात यह है कि इसे इस्तेमाल करना बहुत ही आसान है। पत्रकारिता के लिए नए मीडिया का उपयोग बढ़ रहा है क्योंकि समाचार, वेबसाइट, फेसबुक, ट्विटर, ब्लॉग आदि सभी का उपयोग किसी भी उम्र के लोग आसानी से कर सकते हैं। अतः अगर सही प्रकार से हिन्दी का प्रचार प्रसार किया जा सके तो संसार में यह आसानी से फैल कर अपना स्थान सुदृढ़ कर सकती है ।

ग्रंथसूची :

तिवारी, अर्जुन. मीडिया समग्र . नयी दिल्ली : वाणी प्रकाशन , 2019.

प्रसाद, वासुदेवनंदन. आधुनिक हिंदी व्याकरण और रचना. 23 वाँ संस्करण . नयी दिल्ली: भारती भवन, 1993.

मोहन, सुमित. जनसंचार : प्रौद्योगिकी एवं चुनौतियाँ . नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन , 2005.

लिंक :

https://hi.m.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B5%E0%A5%87%E0%A4%AC%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%87%E0%A4%9F

https://hi.m.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%B8%E0%A4%BE%E0%A4%AE%E0%A4%BE%E0%A4%9C%E0%A4%BF%E0%A4%95_%E0%A4%AE%E0%A5%80%E0%A4%A1%E0%A4%BF%E0%A4%AF%E0%A4%BE

https://www-jagran-com.cdn.ampproject.org/v/s/www.jagran.com/lite/editorial/apnibaat-social-media-and-hindi-14693905.html?amp_gsa=1&amp_js_v=a9&usqp=mq331AQIUAKwASCAAgM%3D#amp_tf=From%20%251%24s&aoh=16934659766280&referrer=https%3A%2F%2Fwww.google.com&ampshare=https%3A%2F%2Fwww.jagran.com%2Feditorial%2Fapnibaat-social-media-and-hindi-14693905.html

https://hi.m.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%88-%E0%A4%AA%E0%A5%81%E0%A4%B8%E0%A5%8D%E0%A4%A4%E0%A4%95

संपर्क-सूत्र : शोधार्थी (हिंदी विभाग)

चौ० चरण सिंह विश्वविद्यालय (मेरठ), उत्तर प्रदेश

मो०न०- 6395432859

ई-मेल- arshadarizvi0786@gmail.com

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका

अंक:7; जुलाई-दिसंबर, 2023; पृष्ठ संख्या : 27-36

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री का महत्व

ज्योति

शोध-सार :

भारतीय ज्ञान परंपरा प्राचीन और गहरे ज्ञान की प्रणाली है, जिसमें ज्ञान का संचयन, प्रयोग और प्रचारण विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। यह प्रणाली भारतीय सभ्यता, धर्म, दर्शन, कला, विज्ञान, और प्रौद्योगिकी के कई पहलुओं को महत्त्व देती है। यह ज्ञान प्रणाली गुरु-शिष्य परंपरा, ग्रंथों का महत्त्व, और विचारों से सम्बद्ध होती है, और इसमें सुसंगत आचार्य और छात्र का सम्बंध महत्त्वपूर्ण होता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी के सम्मान को बहुत महत्त्व दिया गया है। संस्कृत में एक श्लोक है- 'यस्य पूज्यंते नार्यस्तु तत्र रमन्ते देवता:। अर्थात्, जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। महाभारत में कहा गया है कि जिस कुल में नारियों को उपेक्षा भाव से देखा जाता है उस कुल का सर्वनाश हो जाता है।

बीज-शब्द : *भारतीय ज्ञान परंपरा, स्त्री, ऋग्वेद, पुराण, समाज, संस्कृति, शिक्षा, आध्यात्मिक*

प्रस्तावना :

भारतीय ज्ञान परंपरा विस्तृत और विविध ज्ञान का संग्रहण है, जो भारतीय सभ्यता के विकास के साथ-साथ सदियों से चली आ रही है। यह भारतीय सभ्यता और सांस्कृतिक धरोहर का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। इस परंपरा में भारतीय दर्शन, धार्मिक ग्रंथ, कला, विज्ञान, गणित, तकनीक और जीवन के विभिन्न पहलुओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है,जैसे आर्यभट्ट के गणितीय कृतियां और सुश्रुत के चिकित्सा ग्रंथ। इसमें वेद, उपनिषद, पुराण, महाभारत, रामायण, बौद्ध और जैन धर्म ग्रंथ, योग शास्त्र और अनेक धार्मिक और दार्शनिक सृजनाओं के ग्रंथ शामिल हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में आध्यात्म और दर्शन के गहरे संदर्भ हैं, जिसका लक्ष्य मानव जीवन के सर्वांगीण विकास और उन्नति को प्रोत्साहित करना है। यह परंपरा भाषा, कला, संगीत में भी गहरे ज्ञान को धारण करती है और

भारतीय संस्कृति के मूल और मूल्यों का पालन करती है। भारत में नारी विषयक चिंतन का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन काल में नारी को पुरुष के समान स्थान दिया गया था,क्योंकि उसके बिना कोई राजकार्य, धर्म, कार्य, दान- दक्षिणा आदि संभव नहीं था। इस प्रकार नारी को समाज में हर क्षेत्र में पूरा अधिकार एवं दायित्व प्राप्त था।

विश्लेषण :

वेदों में स्त्री के योगदान पर चर्चा मिलती है । ऋग्वेद 10.85.26 - इस मंत्र में स्त्री को संजीवन शक्ति के रूप में दर्शाया गया है। "सजीवनी स्त्री वयुनां प्रयन्ती सुपत्नी सतीनां यमुनां युजते" -इस मंत्र में स्त्री को सजीवनी शक्ति के रूप में वर्णित किया गया है और उनका योगदान पतिव्रता के रूप में दिखाया गया है।मंडल 10 ,सूक्त 85 ,ऋग्वेद - इस सूक्त में स्त्री का योगदान हवन और यज्ञ के कार्यों में प्रस्तुत किया गयाहै। यह कहा गया है कि स्त्रियां यज्ञ आयोजन में भाग लेती हैं और देवों की कृपा और आशीर्वाद के लिए यज्ञ को संपन्न करती हैं।

मंडल 10, सूक्त 159, ऋगवेद - इस सूक्त में स्त्री को संगीत और कला के क्षेत्र में माहिर होने के कारण प्रशंसा की गई है। उसकी योग्यता का वर्णन किया गया है और उसे कला के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करने की प्रेरणा दी गई है। मंडल 1, सूक्त 126, ऋग्वेद - इस सूक्त में स्त्री को धार्मिक अद्भुतता की आराध्य और यजमान के यज्ञ के साथ जोड़ने के रूप में दर्शाया गया है। उसके योगदान से यज्ञ की सफलता होती है और धार्मिक अद्भुतता की सृष्टि की रचना की जाती है।

यजुर्वेद में स्त्री का यज्ञों में महत्त्वपूर्ण योगदान के बारे में बताया गया है । वे यजमान के यज्ञ के कार्यों में भाग लेती थीं और अनुष्ठान के बारे में जानकार होती थीं। विदुषी नारी अपने विद्या-बल से हमारे जीवन को पवित्र करती रहे। वह कर्मनिष्ठ बनकर अपने कर्मों से हमारे व्यवहारों को पवित्र करती रहे। अपने श्रेष्ठ ज्ञान एवं कर्मों के द्वारा संतानों एवं शिष्यों में सद्गुणों और सत्कर्मों को बसाने वाली वह देवी गृह आश्रम -यज्ञ एवं ज्ञान- यज्ञ को सुचारू रूप से संचालित करती रहे। यजुर्वेद में ३/४४, ३/४५,३/४७,३/६०,११/५,१५/५० में स्त्री के यज्ञ में भाग लेने के स्पष्ट प्रमाण हैं।

सामवेद में स्त्री को संगीत और गीत के क्षेत्र में अहम भूमिका दी गई है। वेदिक सामगानों की पाठशालाओं में,स्त्रियाँ गीत गाती थीं और ध्वनि में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण था। अथर्ववेद में स्त्री को आध्यात्मिक अद्भुतता के प्रतीक के रूप में दर्शाया गया है। वे आध्यात्मिक अद्भुतता के साथ धार्मिक कार्यों का भी हिस्सा थीं और मंत्र पाठ और यज्ञों के कार्यों में भाग लेती थीं।

अथर्वेद ७/६८/२ में कहा गया है कि हे प्रेमरसमयी माँ! तुम हमारे लिए मंगल कारिणी बनो, तुम हमारे लिए शांति बरसाने वाली बनो, तुम हमारे लिए उत्कृष्ट सुख देने वाली बनो। हम तुम्हारी कृपा- दृष्टि से कभी वंचित न हो। अथर्ववेद ३/२८/४ में कहा गया है कि इस गृह आश्रम में पुष्टि प्राप्त हो, इस गृह आश्रम में रस प्राप्त हो। इस गिरः आश्रम में हे देवी! तू दूध-घी आदि सहस्त्रों पोषक पदार्थों का दान कर। हे यम-नियमों का पालन करने वाली गृहणी! जिन गाय आदि पशु से पोषक पदार्थ प्राप्त होते हैं उनका तू पोषण कर। अथर्ववेद ३/२८/६, ३/३०/६, १४/२/१८, १४/२/२३, १४/२/२४ में भी नारी के यज्ञ में भाग लेने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। ये वेदों में स्त्री के योगदान के कुछ प्रमुख पहलु हैं, जिनसे उनका महत्त्व और भूमिका धार्मिक और सामाजिक संरचना में प्रकट होता है।

भागवत पुराण, विष्णु पुराण, और देवी भागवत पुराण में स्त्री का महत्त्व और योगदान उल्लेखनीय है। भागवत पुराण में, स्त्री का योगदान भगवान के भक्तों के जीवन में महत्त्वपूर्ण होता है। उदाहरण के रूप में, कुंती, द्रौपदी की कथाएँ हैं, जो धार्मिकता, भक्ति, और उनके समर्पण के उदाहरण के रूप में दिखाई देती हैं। देवी भागवत पुराण में मां दुर्गा, माँ काली, और अन्य देवियों का महत्त्व अत्यधिक होता है। इन पुराणों में स्त्रियाँ देवी के रूप में उपास्या होती हैं और उनके योगदान का महत्त्व होता है।ये पुराण स्त्री के धार्मिक और आध्यात्मिक योगदान के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं और स्त्री को भगवान के भक्त के रूप में अहम भूमिका देते हैं, जिससे उनका समाज में महत्त्व बढ़ता है।

विष्णु पुराण में, सती के माध्यम से स्त्री का त्याग और धर्म के प्रति समर्पण का उदाहरण दिया गया है। उन्होंने अपने पति, भगवान शिव के लिए आत्मा देने का निर्णय लिया था। विष्णु पुराण में प्रह्लाद की माँ कैयादु के योगदान का उल्लेख है, जो उनके पुत्र के धर्म के पक्ष में खड़ी होकर उसके साथ धार्मिक लड़ाई लड़ती है। महाभारत में स्त्री का योगदान और महत्त्व कई प्रकार से प्रस्तुत किया गया है । द्रौपदी महाभारत की महत्त्वपूर्ण स्त्री चरित्रों में से एक है। उन्होंने महाभारत के प्रमुख घटनाओं में योगदान दिया, जैसे कि कर्ण और दुर्योधन के खिलाफ पांच पांडवों की पत्नी के रूप में खड़ी होकर उन्होंने अपमान का सामना किया। उनका त्याग और निष्काम भक्ति धर्म के प्रति उनके महत्त्व को बढ़ा देते हैं। कुंती महाभारत की अन्य एक महत्त्वपूर्ण स्त्री है, जिन्होंने पांडु की पत्नी के रूप में पांडवों को जन्म दिया और उनका पालन-पोषण किया। उनकी तपस्या और मातृभाव भी महत्वपूर्ण है।हिडिंबा महाभारत में भी महत्त्वपूर्ण रूप से प्रस्तुत है। वह भीम की पत्नी थी और महाभारत के घटनाक्रम में उनका योगदान रहा । उत्तरा विराट राजा की कन्या थी, उन्होंने महाभारत के युद्ध में अर्जुन के रथ को चलाया और उसे संभाला, जिससे उनका योगदान युद्ध में महत्त्वपूर्ण था। धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी ने अपने पति के साथ धर्म के प्रति अपना समर्पण दिखाया और महाभारत के युद्ध के दौरान उनका अहम योगदान था। इसतरह महाभारत में स्त्रियों का योगदान और महत्त्व धार्मिक और सामाजिक संरचना में प्रमुख था, और उन्हें उनके योगदान के लिए महत्त्व दिया गया है।

स्त्री का सामाजिक स्थान :

वैदिक युग में स्त्री ने समाज की सरंचना को कई तरीकों से प्रभावित किया था और उनका योगदान अहम था। स्त्री को वैदिक युग में धार्मिक प्रतिष्ठा का प्रमुख हिस्सा माना गया था। वे यज्ञों और ऋतुआलों में अपने पति के साथ भाग लेती थीं । कुछ स्त्रियाँ वैदिक युग में शिक्षा प्राप्त करती थीं और वेदों का अध्ययन करती थीं। वे धार्मिक ज्ञान के प्रसार में भाग लेती थीं और पुरुषों को शिक्षा देती थीं। स्त्री को यज्ञों में भाग लेने का अधिकार था, और वे यज्ञ के साथ अग्नि की पूजा और अन्य कार्यों में भाग लेती थीं।

गृह प्रबंधन :

स्त्रियाँ गृह प्रबंधन का अधिकार रखती थीं और उन्हें घर के संचालन, खाद्य पकाना, और परिवार की देखभाल का महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा जाता था। वैदिक समय में, समाज में स्त्री की मूलभूत समानता की भावना थी और उन्हें समाज के विभिन्न कार्यों में भाग लेने का अधिकार था।वैदिक युग में स्त्री के अधिकार और कर्तव्य वेदों और ब्राह्मणिक समाज के सामाजिक आदर्शों के साथ माने जाते थे। इस युग में स्त्री की भूमिका विभिन्न यज्ञ और परिवार के धार्मिक कार्यों में अहम थी, लेकिन उनकी सामाजिक स्थिति अधीन थी। ये कुछ मुख्य अधिकार और कर्तव्य थे ।

स्त्री के अधिकार : स्त्री को विवाह में अधिकार प्राप्त थे और उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार पति चयन करने का अधिकार था। स्त्री को शिक्षा का अधिकार था, और वे वेदों और धार्मिक शास्त्रों का अध्ययन कर सकती थीं। स्त्री को यज्ञों में भागीदारी का अधिकार था, और वे यज्ञों में अहुतियाँ देने के रूप में योगदान कर सकती थीं।

स्त्री का कर्तव्य :

स्त्री का प्रमुख कर्तव्य पतिव्रता धर्म का पालन करना था, जिसमें वह अपने पति की सेवा करती और उनके साथ धर्मिक कार्यों में भाग लेती थी। स्त्री का एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य पुत्रकामेष्टि यज्ञ करना था, जिसमें वे पुत्र की प्राप्ति के लिए यज्ञ करती थी। स्त्री का गृह का प्रबंधन करना और परिवार के दायित्वों का पालन करना उनका प्रमुख कर्तव्य था। स्त्री का यज्ञों और धार्मिक शिक्षा देने का कर्तव्य था और वे अपने बच्चों को धर्म की शिक्षा देती थीं। वैदिक युग में, स्त्री का सामाजिक स्थान धार्मिक और पारंपरिक आदर्शों के अनुसार निर्धारित होता था और उन्हें विभिन्न कार्यों में योगदान करने का अधिकार और कर्तव्य प्राप्त था।

स्त्री और सांस्कृतिक धरोहर :

वैदिक युग (ग्रीक संस्कृति के समकक्ष) में भारतीय स्त्री और सांस्कृतिक धरोहर का महत्त्वपूर्ण स्थान था। यहाँ कुछ उदाहरण हैं: ऋग्वेद वैदिक साहित्य का प्राचीनतम भाग है, और इसमें स्त्रियों

का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह यज्ञों में भाग लेती थीं और मंत्रों का उच्चारण करती थीं।

ऋग्वेद में स्त्री से संबंधित मंत्र :

ऋग्वेद में कई मंत्र हैं जो स्त्री के महत्त्व को बयां करते हैं, जैसे कि "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" (स्थान 11.5.27) जिसका अर्थ है, "जहाँ स्त्रियाँ पूजी जाती हैं, वहाँ देवता सुखी रहते हैं"। वैदिक समय में, स्त्रियाँ यज्ञों का महत्त्वपूर्ण हिस्सा थीं और वे यजमान के साथ मिलकर यज्ञ की रचना करती थीं। यज्ञों के लिए विशेष रूप से डिज़ाइन किए जाने वाले अलंकरण और वस्त्रों की तैयारी में स्त्रियों का योगदान महत्त्वपूर्ण था। वैदिक युग में वेदिका ग्रंथों की रचना और पाठन महिलाओं द्वारा किया जाता था। वेदिका ग्रंथों में यज्ञों और अन्य धार्मिक कार्यों के विधिनिषेधन का विस्तार किया गया है। कथक नृत्य एक प्रमुख भारतीय शैली है और इसमें गुरु-शिष्य परंपरा महत्त्वपूर्ण है। यहाँ महिला कथक नृत्यांगनाएँ सांस्कृतिक धरोहर के महत्त्व की अद्वितीय झलक देती हैं। भारतीय स्त्रियाँ अक्सर सौन्दर्य और फैशन के क्षेत्र में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं, जैसे कि एंब्रॉयडरी, ज़री काम, और सिलाई कला में।

परंपरागत वस्त्रधारण :

भारतीय स्त्रियाँ परंपरागत भारतीय परंपराओं का पालन करती हुई साड़ी, सलवार-कमीज़ और लेहेंगा-चोली आदि वस्त्र का परिधान करती हैं। संस्कृतिक धरोहर के रूप में, महिलाएँ भारतीय मंदिरों के निर्माण में भी अहम भूमिका निभाती थीं। वे अक्सर मूर्ति सजाने और मंदिर की सजावट करने में शिरकत करती थीं। इन उदाहरणों से प्रतीत होता है कि वैदिक युग में भारतीय स्त्रियाँ सांस्कृतिक धरोहर के संरक्षण में अहम भूमिका निभाती थीं और वे समाज के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी अहम भूमिका अदा करती थीं । वैदिक युग में स्त्री ने नृत्य, संगीत, कला और धार्मिक प्रथाओं के क्षेत्र में योगदान किया और समृद्धि का हिस्सा बनीं। उनका योगदान समाज में महत्त्वपूर्ण था और वे धार्मिक और सांस्कृतिक गतिविधियों का अहम हिस्सा थीं।

स्त्री और आर्थिक योगदान :

महिलाएँ घर के प्रबंधन में अहम भूमिका निभाती थीं । जैसे कि भोजन की तैयारी, घर की सफाई, और परिवार के सदस्यों की देखभाल। कृषि कार्यों में भी स्त्रियों का योगदान था। वे खेतों में काम करने में भी योगदान देती थीं और फसलों की देखभाल करती थीं।

व्यापार और वाणिज्यिक क्रियाएँ :

कुछ स्त्रियाँ व्यापारिक गतिविधियों में भी योगदान देती थीं । जैसे कि सौन्दर्य उत्पादों की विपणी और वाणिज्यिक क्रियाएँ।स्त्रियाँ विवाह के समय धन और आय के रूप में धान की उपासना करती थीं, और यह विदायी कर्म के रूप में जानी जाती थी।कुछ स्त्रियाँ धन के प्रबंधन में अपना योगदान देती थीं, जैसे कि संचयन, ऋण, और निवेश।इन उदाहरणों से प्रतीत होता है कि वैदिक युग में स्त्रियाँ घरेलू और आर्थिक क्रियाओं में अपना योगदान देती थीं और परिवार की आर्थिक स्थिति को सुनिश्चित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं।

स्त्री और शिक्षा :

वैदिक युग में स्त्रियों का शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान था, लेकिन यह योगदान सांविदानिक और असांविदानिक दोनों स्तरों पर होता था । वैदिक काल में, धार्मिक शिक्षा के लिए गुरुकुल प्रणाली प्रमुख थी, जिसमें छात्र अपने गुरु के आश्रम में जाते थे। इस प्रणाली में कई स्त्री गुरुकुलों में शिक्षा प्राप्त करती थीं, लेकिन वे अक्सर ब्राह्मण वर्ण की होती थीं। ब्राह्मण वर्ण की स्त्रियों उपनयन संस्कार के अंतर्गत वेदों का अध्ययन करने का अधिकार रखती थीं। वे वेदों की पाठक और शिक्षक भी बन सकती थीं।वे घर के प्रबंधन में अहम भूमिका निभाती थीं, और यह समाज के नैतिक और धार्मिक शिक्षा का हिस्सा भी था। स्त्रियाँ वैदिक युग में धार्मिक प्रथाओं के अंतर्गत ध्यान, मेधा, और तपस्या में योगदान करती थीं, जिससे उन्हें धार्मिक शिक्षा प्राप्त होती थी। इस प्रकार, स्त्रियाँ वैदिक युग में धार्मिक और आर्थिक शिक्षा के क्षेत्र में अपना योगदान देती थीं, जो सांविदानिक और असांविदानिक दोनों स्तरों पर होता था।

स्त्री और आध्यात्मिकता :

वैदिक युग में स्त्रियों की आध्यात्मिक भूमिका को धार्मिक ग्रंथों में कई तरीकों से प्रकट किया गया है। वेदों में स्त्री की महत्त्वपूर्ण भूमिका: वेदों में स्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान है, और उन्हें यज्ञों में भाग लेने का अधिकार दिया गया है। उन्हें मंत्रों का पाठन करने और यज्ञशाला में भाग लेने की अनुमति थी। ब्राह्मण वर्ण की स्त्रियों को उपनयन संस्कार का अधिकार था, जिसके बाद वे वेदों का अध्ययन करने के लिए योग्य होती थीं। धार्मिक ग्रंथों में गुरुकुल प्रणाली का उल्लेख मिलता है, जिसमें स्त्रियाँ आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं।

वैदिका (ब्राह्मण) ग्रंथों में उल्लेख :

वैदिका ग्रंथों में स्त्रियों के यज्ञों में भाग लेने, मंत्र पाठ करने, और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं में उनके योगदान का वर्णन मिलता है। पुराणों में भगवान की भक्तिमय स्त्रियों की कथाएँ प्रस्तुत की जाती हैं, जैसे कि सीता, द्रौपदी और पार्वती। इन कथाओं के माध्यम से स्त्रियों का आध्यात्मिक महत्त्व दिखाया गया है।

संगीत और कला के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण :

स्त्रियों का संगीत, नृत्य, और कला में योगदान भी आध्यात्मिक रूप से अहम माना जाता था, क्योंकि यह आत्मा के संयम और विकास का हिस्सा था। इन रूपों में, वैदिक युग के धार्मिक ग्रंथों में स्त्री की आध्यात्मिक भूमिका को प्रकट किया गया था और उनके योगदान को महत्त्वपूर्ण माना गया था ।

निष्कर्ष:

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री का महत्त्व अत्यधिक रहा है। स्त्री भारतीय समाज की आधारभूत इकाई है ।भारतीय संस्कृति में मातृभावना गहरी है और माँ को देवी की तरह पूजा जाता है। स्त्री एक माँ की भूमिका निभाती है और घर के आधार को दृढ़ करती है। स्त्री को धार्मिक कार्यों में प्रमुख भूमिका मिलती है। वह पूजा, व्रत, और धार्मिक कार्यों का सुचारू रूप से निर्वहन करती है और परिवार को धार्मिक मार्ग पर चलने में मदद करती है। स्त्री समाज के साथी के रूप में अपने पति के साथ सामाजिक और आर्थिक जीवन का सहयोग करती है। विवाह के माध्यम से वह परिवार

का एक प्रमुख हिस्सा बनती है और परिवार के साथी के रूप में साझा जीवन बिताती है। स्त्री आर्थिक योगदान करती है, वह कृषि, उद्योग, और व्यापार में भाग लेती है और परिवार की आर्थिक स्थिति को सुधारने में मदद करती है। स्त्री को शिक्षा का समर्थन प्राप्त करने का मौका दिया जाता है, और वह अपनी शिक्षा को आगे बढ़ाकर समाज के विकास में भाग लेती है। स्त्री सांस्कृतिक कार्यक्रमों और परंपराओं का प्रमुख हिस्सा होती है, जैसे की नृत्य, संगीत । आधुनिक समय में, स्त्री के महिला सशक्तिकरण के लिए कई प्रमुख अभियान चलाए जा रहे हैं, जो उनके समाज में एक बदलाव लाने का काम कर रहे हैं। स्त्री न केवल घर की अद्भुत धरोहर होती है, बल्कि वह समृद्धि और समाज के विकास के साथ एक सशक्त भारत की ओर कदम बढ़ाने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

ग्रंथसूची :

अग्रवाल, जे सी. भारत में नारी शिक्षा . नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन , 2009.

अग्रवाल, वासुदेवशरण. भारतीय संस्कृति. बनारस: मोतीलाल बनारसीदास, 1955.

आप्टे, विनायक गणेश. आश्वलायन गृह्यसूत्र. आनंदाश्रम मुद्रणालय, 1936.

उपाध्याय, प्रो. रामजी. प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन , 1966.

गोयंदका, हरिकृष्णदास. ईशादि नौ उपनिषद् . गोरखपुर : गीताप्रेस , 2007.

ज्ञानी, शिवदत्त. वेद कालीन समाज. वाराणसी: चौखंभा विद्याभवन , n.d.

व्यास. गीता. गोरखपुर: गीताप्रेस, 2010.

शंकराचार्य. बृहदारण्यकोपनिषद शांकरभाष्य. गोरखपुर: गीताप्रेस , 1915.

ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, महाभारत, भागवत पुराण, विष्णु पुराण, देवी भागवत पुराण

संपर्क-सूत्र : शोधार्थी, हिन्दी विभाग

दिल्ली विश्वविद्यालय

ईमेल : jyotikhutela8@gmail

चलभाष : 7011297316

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका

अंक:7; जुलाई-दिसंबर, 2023; पृष्ठ संख्या : 37-51

हिंदी गीतिकाव्य परंपरा और 'सजल' : एक अन्वेषण

कृष्ण कुमार यादव 'कनक'

शोध-सार :

मानव सभ्यता के उदय के साथ ही साहित्य के जिस तत्व का उदय हुआ, वह गीत ही है। गीतिकाव्य परंपरा का इतिहास भी उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव के भावों तथा विचारों को अभिव्यक्ति देने वाली उसकी प्रथम भाषा का। गीत का संबंध आज भी मानव के जन्म से लेकर उसके अंतिम समय तक बना ही रहता है। हर्ष-विषाद, संयोग-वियोग, उत्साह-शोक, स्मृति-विस्मरण आदि प्रत्येक संवेदनशील अवसर पर जो सहज ही साक्षात् हो आता है वही तो गीत है। अधरों पर अनायास उत्पन्न हुई गुनगुनाहट जब किसी भाषा के शब्द अधिगृहीत कर लेती है, तो इस नवीन शब्द-संपदा से संपन्न भाव माला गीत कहलाती है। इस परिप्रेक्ष्य में हिंदी भाषा की गीतिकाव्य परंपरा अतिशय संपन्न तथा गरिमापूर्ण रही है। हिंदी भाषा का साहित्य और उसकी गीतिकाव्य परंपरा दोनों का प्रादुर्भाव एवं विकास एक-दूसरे का सहयोगापेक्षी रहा है। यही कारण है कि हिंदी भाषा तथा उसके साहित्य की गीतिकाव्य परंपरा ने निरंतर नवीन सोपान स्थापित किए हैं। इस नवीनीकरण की प्रक्रिया में जहाँ एक ओर हिंदी भाषा ने व्याकरणिक दृष्टि से स्थायित्व प्राप्त करने हेतु देवनागरी लिपि के मानक स्वरूप का निर्धारण किया तो गीतिकाव्य परंपरा में विकसित हुई नवीन विधा 'सजल' ने गीतिकाव्य की सभी मौलिक संकल्पनाओं को धारण करते हुए भाषा के मानकीकृत स्वरूप को स्वीकार कर उसके उन्नयन में अपनी महती भूमिका निभाई है। जहां उर्दू की विधा गजल के प्रति आकर्षित होते हिंदी कवि उच्च भावों का समायोजन करने के बाद भी कभी वह स्थान न पा सके जो कि उर्दू भाषा के आधिकारिक वक्ताओं को प्राप्त था, वहीं 'सजल' ने उस गजल के समान ही सभी आकर्षणों को स्वयं में समाहित करते हुए अपने पारंपरिक छंदों को भी नवीनता प्रदान की; साथ ही अपनी मौलिक संप्रेषणीयता के माध्यम से हिंदी भाषा के साहित्य को भी सशक्त बनाया। वर्तमान समय में संपूर्ण हिंदी

जगत में एक नवीन आंदोलन के रूप में 'सजल' आंदोलन ने हिंदी भाषा तथा उसके साहित्य पर जो उपकार किया है वह सदैव ही अविस्मरणीय रहेगा।

बीज शब्द : *सजल, मानकीकरण, गीतिकाव्य, वर्तमान साहित्य, साहित्यिक नवचेतना*

प्रस्तावना :

भारतीय ज्ञान परंपरा में मानव सभ्यता के भाषाई विकास के साथ विकसित होने वाली अवधारणाओं में एक प्राचीनतम अवधारणा गीतिकाव्य परंपरा भी है। मानव के प्रथम भाषाई उच्चारण के साथ साहित्य की जो परंपरा उच्चरित हुई, वह गीति परंपरा ही थी। एक ऐसी परंपरा जिसने मानव जीवन के प्रत्येक क्षण को स्वयं में सहेजकर उसे नवता तथा स्थायित्व प्रदान करने का महनीय कार्य किया। अनेक कथा प्रसंग आदि सदियों तक इसी परंपरा के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी स्थानांतरित होते रहे। भाषाई लिपि के विकास के साथ ही यह ज्ञान परंपरा चिरस्थायी स्वरूप धारण करने में सफल हुई। वर्तमान समय में हिंदी भाषा तथा उसकी गीतिकाव्य परंपरा में उपजी नवीन विधा 'सजल' ने हिंदी कवियों को अन्य भाषाओं के मोहपाश से मुक्त कर अपनी सामर्थ्य का साक्षात्कार तो कराया ही है साथ ही नवता के नवीन सोपानों की स्थापना के साथ ही हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी के मानक स्वरूप की स्थापना में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

विश्लेषण :

भारतीय सांस्कृतिक चेतना के मूल में साहित्य का जो अनुबंध है, वह गीत है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यंत आजीवन एक भारतीय नागरिक मानव जीवन की सार्वभौमिकता के सारगर्भित रहस्य की सापेक्षता को गीत में ही पाता है। मानव मात्र की दैनंदिन वैचारिकी के आप्लावित होते रसमय अनुभावों की मूर्तवत्ता का शाश्वत संवाद है गीत। हर्ष, विषाद, आमोद, उत्साह, विरक्ति, आह्लाद, विछिन्नता, आक्रोश, भय, विस्मय आदि प्रत्येक मानवीय भाव गीतों की प्रेरणा बना है। यहीं से चली है हिंदी साहित्य की गीतिकाव्य परंपरा; एक ऐसी परंपरा जो मानव की व्युत्पत्ति के साथ व्युत्पन्न हुई है और मानव के साथ ही विश्राम पाएगी। यह परंपरा मानव जीवन को रससिक्त बनाए रखने

का महत्वपूर्ण उपागम है। मानव जब सांसारिक संलिप्तताओं के प्रभाव को असहनीय पाता है, तो उन हताशा के क्षणों में भी गीत ही उसे नवजीवन के नवीन पथ का दर्शन कराते हैं और हर्ष का अतिरेक भी सहसा अधरों पर गीत बो देता है। यानी कि मानव जीवन की प्रत्येक परिस्थिति में जो मानव की सहचरी बनकर उद्वेलनकारी शक्ति के रूप में उसे संबल प्रदान करती है, साहित्य की वही महनीय परंपरा हिंदी की गीतिकाव्य परंपरा है। गीत की उत्पत्ति के संदर्भ में युवा कवि तथा वर्तमान समय की मंचीय वाचिक परंपरा के सुनामधन्य युवा गीतकार प्रवीन पाणेय की निम्नलिखित पंक्तियां नि:संदेह पूर्णरूपेण सार्थक तथा अर्थवती प्रतीत होती हैं –

उर उदधि दुखी नितांत हो।

या कि तीव्रतम प्रशांत हो।

गीत जन्मता है सिर्फ तब,

मन अशांत या कि शांत हो। (मंचीय वाचिक परंपरा से उद्धृत)

यहाँ कवि का आशय स्पष्ट है कि गीत की उत्पत्ति अतिशय हर्ष अथवा अतिशय विषाद के क्षणों में होती है। यही कारण है कि कविता के सायास सृजन की अपेक्षा अनायास अवतरण को ही उत्कृष्ट माना जाता है।

'गीत' हिंदी भाषा तथा साहित्य की सुदीर्घ वैचारिक तथा भावोद्वेलनकारी परंपरा का प्राण तत्व है। यह मानव मन तथा उसके समग्र चिंतन की मूलभूत संवेदना व भावों की औचित्यपूर्ण संवेगात्मक अवचेतना को चिर स्थायित्व प्रदान कर उसे सुदीर्घकालीन यशकाय रूप में संचित करने व सदैव के लिए सहेजे रखने में समर्थ है। इस संबंध में लक्ष्मण दत्त गौतम लिखते हैं –

वैसे मैं समझता हूँ कि किसी भी समर्थ काव्य का कोई अंतिम निष्कर्ष नहीं होता, काल के बदलने के साथ मूल्य भी बदलते हैं और निष्कर्ष भी - मैंने अपने समय में प्रस्तुत काव्य की उत्पाद्य सामग्री को पान के हरे पत्ते पर

> लेप किए गए सफेद चूने और भूरी सुपारी का चर्वण करते हुए, उसके स्थूल रूप को बदलकर एक रसायन तत्व की खोज करने की भरकस कोशिश की है। (भारद्वाज 2002:69)

यानी कि लेखक का आशय है कि काव्य देश, काल, परिस्थिति आदि को ग्रहण करके स्वयं के स्वरूप में वांछनीय परिवर्तन लाकर स्वयं को जीवंत बनाए रखता है। ये सभी परिवार तत्कालीन युगधर्म, वैचारिक अनुष्ठान, भावात्मक अवचेतना, मूल्य अवधारणा तथा नैतिक विमर्श से प्रभावित होते हैं; जोकि उस संपूर्ण परिवर्तन व परिमार्जन के मूलाधार कहे जा सकते हैं। ये परिवर्तन न केवल वैचारिक पटल तक ही सीमित होते हैं अपितु इनका सीधा प्रभाव भौतिक जगत पर भी पड़ता है। यही कारण है कि प्रत्येक युग का परिचय उस युग के साहित्य से ही प्राप्त होता है।

हिंदी गीत काव्य परंपरा में 'सजल' नामक नवीन विधा की उत्पत्ति भी समय की उन सभी वैचारिक अवधारणाओं तथा संकल्पनाओं का जीवंत उदाहरण है, जो कि भारतीय अस्मिता तथा भाषाई गौरव के संरक्षण हेतु अपरिहार्य हो चुकी थीं। हिंदी भाषा में समाहित हो चुके इस्लामिक भाषाई आलंबनों तथा अंग्रेजियत के भौंड़े आचरण ने हिंदी की मौलिकता को पूरी तरह से समाप्त कर दिया था। जिस भाषा के परिष्करण हेतु कभी संस्कृत की तत्सम शब्दावली एक मात्र विकल्प हुआ करती थी, उस भाषा की वर्तमान स्थिति यह हो चुकी है कि आज अरबी, फारसी, उर्दू और अंग्रेजी के शब्दों ने इस प्रकार अपना आधिपत्य स्थापित किया है कि सामान्य बोलचाल के वाक्यों में भी हिंदी शब्दावली खोज पाना अतिशय क्लिष्ट और असंभव सा प्रतीत होने लगा है। ऐसे में हिंदी साहित्य की गीतिकाव्य परंपरा की नवीन विधा 'सजल' हिंदी भाषा तथा उसकी लिपि देवनागरी के लिए एक वरदान के रूप में अवतरित हुई है जिसने हिंदी गीतिकाव्य परंपरा में नवाचार की गहन सांद्रता भरकर हिंदी भाषा, उसकी लिपि तथा उसके साहित्य को गरिमावान बनने में अपना महत्वपूर्ण अवदान प्रेषित किया है।

'सजल' शब्द के शब्दकोशीय अर्थ की चर्चा करें तो पाएंगे –

1-जल से युक्त 2- अश्रुपूरित 3- तरल पदार्थ से युक्त। (बाहरी 2010:769)

इन सभी अर्थों पर दृष्टिपात करते हुए ज्ञात होता है कि 'सजल' शब्द में ही यह अर्थ निहित है कि यहाँ मानवीय सरोकार, हृदय के तरल भाव, सहज अनुभूतियां, दया, करुणा, प्रेम आदि की गहनतम संवेदनाओं की प्रधानता ही सर्वोपरि है। हिंदी साहित्य के गीतिकाव्य की नवीन विधा 'सजल' के संबंध में यह संवेदना वर्तमान हिंदी साहित्य में हिंदी भाषा के मानकीकृत स्वरूप, हिंदी की लिपि देवनागरी के परिमार्जन, भारतीयता के मूल्य सिद्धांतों के संरक्षण, मानवीय मूल्यों के संवर्धन, नैतिकता, सदाचरण, साहित्य की शुचिता, मानव संस्कृति के अनुरक्षण, दुष्प्रवृत्तियों के उन्मूलन तथा सद् प्रवृत्तियों के संरक्षण आदि सभी को संग्रहीत कर उन्हें नवोन्मेषी आकार प्रदान करने का पर्याय बन गई है।

भाषा कोई भी क्यों न हो, उसका साहित्य जिस देश, काल, परिस्थिति से गुजरता है, वह उस काल विशेष की मौलिक अस्मिता को अधिग्रहीत कर लेता है। यही कारण है कि हिंदी साहित्य के विकास क्रम में आने वाले प्रत्येक काल खंड की उसकी कुछ विशिष्ट विशिष्टताओं का दर्शन दृष्टव्य होता है, जो कि साहित्य में प्रविष्ट होते नवाचार तथा तत्कालीन प्रभाव को उद्घाटित करता है। इसी संदर्भ में मध्यकाल को विवेचित करते हुए प्रो. संजीव कुमार श्रीवास्तव जी लिखते हैं –

> इस युग का साहित्य जाति, मजहब की संकीर्णताओं से मुक्त साहित्य है।
>
> (श्रीवास्तव 2022:63)

इस अभिकथन से स्पष्ट है कि तत्कालीन परिस्थितियों में जहां भारतीय मनीषा स्वयं के अस्तित्व के संरक्षण हेतु किसी ठोस आधार को खोजने हेतु प्रण-प्राण से संलग्न थी, ऐसे में जाति-मजहब आदि विषयों पर वैचारिक समयापव्यय हेतु अवकाश ही कहां था! विदेशी आक्रमणकारियों के कुत्सित प्रयास भारतीय अस्मिता को तार-तार कर रहे थे। समग्र भारतीय चिंतन अपने अस्तित्व के संरक्षण हेतु सशंकित था। उस समय की भयापन्न परिस्थितियों का सीधा प्रभाव तत्कालीन हिंदी

साहित्य पर भी हुआ। परिणामस्वरूप जो पूर्व मध्यकाल यानी कि भक्तिकाल का साहित्य प्रत्यक्ष हुआ, उसने संपूर्ण भारतीय मनीषा के केंद्र में ईश्वरीय सत्ता को लाकर खड़ा कर दिया, जो कि उस समय की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता थी। आशय यह है कि जब जिस समय जिस तत्व की प्रधानता की आवश्यकता अनुभूति होती है, साहित्य उसकी आपूर्ति हेतु उसे स्वीकार कर ही लेता है। वर्तमान समय में जहां एक ओर उर्दू की आकर्षक विधा गजल हिंदी के लगभग प्रत्येक कवि को अपनी और सायास आकर्षित रही थी, ऐसे में हिंदी भाषा तथा उसके साहित्य की गरिमा को संरक्षण प्रदान करने हेतु एक नवीन परिवर्तन की अपरिहार्य आवश्यकता अनुभूत हुई। इस आवश्यकता की आपूर्ति हेतु ही हिंदी साहित्य की गीतिकाव्य परंपरा में नवीन विधा के रूप में 'सजल' का प्राकट्य हुआ।

भारतीय ज्ञान परंपरा की मौलिक अवधारणा के अनुसार साहित्य में काव्य को ब्रह्मानंद स्वरूप माना गया है। प्रत्येक व्यक्ति जीवन में आनंद की अनुभूति हेतु ही समस्त सांसारिक उपागम संपन्न करने में संयुक्त बना रहता है। यही कारण है कि प्रत्येक परिस्थिति में वह कुछ न कुछ गुनगुनाते आवश्यक है। मानव की यही गुनगुनाहट ही गीत है, एक ऐसा गीत जो उसे व्यक्ति विशेष के हृदय में उठे संवेगात्मक ज्वार को अनुभूति की लहर के सहारे अग्रसारित करता है। गीत मानव हृदय के अनुभूत सत्य और उसके कारण उत्पन्न संवेगों तथा संवेदनाओं को नव स्वर प्रदान करता है। गीत मानव मन की वैचारिकी तथा अवबोधजन्य प्रज्ञा की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। इस परिप्रेक्ष्य में "कामायनी का बिंब विधान" नामक अपनी आलोचनात्मक कृति में चंचल माहौर जी लिखती हैं –

> आधुनिक मानव के मस्तिष्क में निरंतर चिंता इसलिए बनी रहती है कि कैसे उसे असीम सुख प्राप्त हो। वह कौन सा ऐसा कार्य करे, जिससे उसका जीवन समस्त आपदाओं से उन्मुक्त हो और वह किस सुगम अथवा दुर्गम साधन को अपनाए, जिससे शाश्वत शांति एवं अखंड आनंद की उपलब्धि हो। (माहौर 2023:15)

आशय यह है कि प्रत्येक मानव के जीवन में आज जिस तत्व की न्यूनता है, वह है आनंद। व्यक्ति के जीवन में धन, वैभव, सुख-सुविधाएं, मनोरंजन, खेल, व्यायाम, चिकित्सा आदि सभी भौतिक उपकरण अगणित मात्रा में उपलब्ध हैं, परंतु वह इन सब के बाद भी शांति और आनंद को प्राप्त नहीं कर पा रहा है। ऐसी विषम परिस्थितियों में साहित्य ही एक मात्र ऐसा उपागम है जिसके माध्यम से मानव उस असीम आनंद को प्राप्त कर सकता है। अर्थात् साहित्य को उस असीम आनंद की उपलब्धि का सर्वोत्तम साधन कहा जा सकता है जिसे प्राप्त करने हेतु प्रत्येक मानव जीवन पर्यन्त प्रयासरत बना रहता है। 'सजल' विधा इसी आनंद की प्राप्ति का उत्तम साधन बनकर हमारे समाज में हिंदी साहित्य की नवीन विधा के रूप में प्रस्तुत हुई है। इस विधा में मानव समाज की प्रत्येक हृदयंगम संवेदना को स्वर देने की क्षमता विद्यमान है, जिसकी उपलब्धता मानवीय सरोकारों से दृढ़तापूर्वक संबद्ध है।

प्रो. नजरी मुहम्मद की मानें तो वे लिखते हैं –

> हमारे समाज में धन-संग्रह की प्रवृत्ति सदैव से रही है। एक ओर धन-दौलत के भंवर भरे रहते हैं, दूसरी ओर भुखमरी फैली रहती है। (वर्मा 1989:50)

यह विचार कड़वा अवश्य है, किंतु वर्तमान समय में हमारे समाज का सोलह आना सत्य यथार्थ भी यही है। इस कड़वे यथार्थ को गा देने की क्षमता से संपन्न विधा 'सजल' नि:संदेश समाज के अगणित संतापों तथा क्लेशों को स्वर दे रही है। 'सजल' ने न केवल समाज के इस बदरंग यथार्थ को गाया है, अपितु सजलकारों ने अपनी सजलों के माध्यम से इस सामाजिक समस्या के प्रति मानवीय चिंतन भी प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि वर्तमान समय के हिंदी कवियों में इस विधा के प्रति तेजी से संग्राह्यता के गुण का संचार हुआ है। इस प्रकार इस विधा का प्रसार बड़ी ही तीव्रता से हिंदी साहित्य में हो रहा है, जो कि हिंदी साहित्य के लिए एक बड़ी उपलब्धि के रूप में स्वीकार किया जा रहा है।

साहित्य में लोक जीवन की उपादेयता को कतिपय अस्वीकार नहीं किया जा सकता। सैद्धांतिक आदर्शों से परे लोक का अपना अलग ही व्याकरण होता है, जो कि उसे नवचेतना तथा जीवन के प्रति सकारात्मक ऊर्जा से सुसज्जित बनाए रखता है। यही कारण है कि साहित्य में लोक का अपना विशिष्ट स्थान सदैव से ही रहा है। लोक के संबंध में डॉ. अनुज प्रताप सिंह जी लिखते हैं –

> लोक जीवन अपने आप में एक स्थाई संपदा है। इसका प्रवाह मानव के आदि से अंत तक पूर्णतया संभावित है। काल-प्रभाव अपरिहार्य होता है, परंतु प्रभाव मूल को मिटाता नहीं, बल्कि युगीन स्वरूप देता है । (शुक्ल :204)

यानी कि लोक जीवन के प्रभाव से उत्पन्न परिस्थितियों के माध्यम से प्राचीन परंपराओं को नवीनतम स्वरूप में परिमार्जित करते हुए साहित्य में उसे संरक्षण प्रदान किया जाता है। इस कथन से स्पष्ट है कि तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव से जो परिवर्तन होते हैं, वे परंपरा से चले आ रहे प्रवाह को उस युग विशेष की परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर संपूर्ण समाज के लिए सुलभ बनाने का कार्य करते हैं। इस कथन को यदि 'सजल' के संबंध में विवेचित करें तो दृष्टिगत होता कि सजल ने लोक जीवन के उन सभी तत्वों को स्थान दिया है जिनका सीधा संबंध मानव जीवन की मौलिक उद्भावनाओं से है। यानी कि सजल ने हिंदी साहित्य की गीतिकाव्य परंपरा में लोक जीवन के समाहार के माध्यम से जीवन के यथार्थ चिंतन तथा मूलभूत अवधारणाओं को नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया है। साथ-साथ ही उसे वर्तमान समय की परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर चिर स्थायित्व प्रदान करने का महनीय उपक्रम किया है। 'सजल' ने मानव चिंतन को नवीन स्वरूप प्रदान किया है, एक ऐसा स्वरूप जो मानव समाज की विद्रूपताओं, विसंगतियों, दुष्प्रवृत्तियों आदि के उन्मूलन तथा सकारात्मक वैचारिक संपदा के उत्सवधर्मी प्रसार को बल देने में समर्थ सिद्ध हुआ है।

'सजल' हिंदी गीतिकाव्य परंपरा की नवीन विधा के साथ-साथ हिंदी भाषा के परिष्कृत स्वरूप के संरक्षण का एक ऐसा आंदोलन है जिसने भारतीय संस्कृति, सभ्यता, भाषाई गौरव,

मानवीय मूल्यों आदि के संरक्षण हेतु संकल्प लिया है। 'सजल' के संबंध में अपनी आलोचनात्मक कृति "तीसरी आंख और सजल" में कृष्ण कुमार 'कनक' ने लिखा है –

> हिंदी गीतिकाव्य की नवीन विधा 'सजल' की स्थापना को हिंदी भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र में एक वरदान के रूप में देखा जा सकता है। (कनक 2023:100)

इस कथन का आशय यह है कि सजल विधा में वर्तमान परिस्थितियों, समस्याओं, सामाजिक विद्रूपताओं, मूल्य क्षरण, वैचारिक विभ्रमों, सामाजिक व राष्ट्रीय संवेदनाओं आदि का मानवीय सरोकार तो समाहित है ही, साथ ही हिंदी भाषा तथा उसकी लिपि देवनागरी के मानकीकृत स्वरूप पर भी बल दिया गया है। परिणामस्वरूप पाश्चात्य प्रभाव के कारण हिंदी साहित्य के विकृत होते स्वरूप पर भी अंकुश लगा है। यही कारण है कि सजल के आगमन के पश्चात हिंदी साहित्य में भाषाई गौरव की पुनर्स्थापना तथा मौलिक स्वरूप को स्थायित्व प्राप्त हुआ है।

सजल हिंदी साहित्य जगत् में एक ऐसी विधा के रूप में प्रत्यक्ष हुई है, जिसने मानव जीवन के प्रत्येक पहलू को स्पर्श करने का अवकाश प्रथमतया प्रदान तो किया ही है साथ ही समाज के उस भौंड़े यथार्थ को भी उजागर किया है, जो कि समाज की समग्र चेतना को खोखला बनाने पर आमादा है। इस संबंध में साहित्य भूषण डॉ. रामसनेही लाल शर्मा 'यायावर' जी की सजल के कुछ पदिक दृष्टव्य हैं-

जलते हुए सवाल न पूछ।
मुझसे मेरा हाल न पूछ।।

क्यों लाठी बंदूक चली।

कैसे हुआ बबाल न पूछ।।

शाम ढली जो सुबह हुई।

ये क्या हुआ कमाल न पूछ।।

ध्वस्त हुई मन की नगरी।

कैसा था भूचाल न पूछ।।

सुखी मौलवी-पंडित सब।

कबिरा क्यों बेहाल न पूछ।। (यायावर 2021:152)

उपर्युक्त सजल में सजलकर ने व्यंग्यात्मक शैली में उस सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत किया है, जिसे प्रत्येक व्यक्ति नित्य ही देखा करता है। यहाँ भले ही स्पष्ट रूप से सीधे तौर पर देश की सत्ता पर बैठे समय के सिकंदरों का नाम लेकर सजलकर ने व्यंग्य नहीं किया तथापि आशय कतिपय अस्पष्ट भी नहीं रह गया है। ऐसे में जहां संपूर्ण मानव जाति संकटापन्न स्थितियों का ग्रास बनने को है, वहीं सजलकार प्रत्यक्ष रूप से प्रत्येक नागरिक को चैतन्य हो जाने हेतु आग्रही हुआ है। यानी कि वर्तमान समय की सामाजिक, राजनैतिक तथा सार्वभौमिक विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के प्रति सजलकार की चिंता स्पष्ट है। वह मानवीय संवेदनाओं को जागृत करने के अपने नैतिक दायित्व का निर्वहन करते हुए अपनी सजलों के माध्यम से नवजागरण एवं नवोत्थान की संकल्पना को पुनर्जीवित करने का प्रयास कर रहा है। वह चाहता है कि समस्त मानव जाति में मानवीय उत्कर्ष हेतु अनुचिंतन का भाव जागृत हो ताकि मानव कल्याण की धारा को उचित मार्ग मिल सके। वहीं

विजय राठौड़ जी अपनी सजल में भारतीय परंपराओं के घटते मूल्यों पर चिंतित होते हुए लिखते हैं-

अब आपस में प्रेम और अनुराग कहां है।
अब भोजन में पशु-पक्षी का भाग कहां है।।

जिनके मन में है केवल कीचड़ ही कीचड़।
मूंछ ऐंठ कहते कपड़ों में दाग कहां है।।

तिल - गुण जैसे आपस में जुड़कर रहलें हम।
अब आपस में इतना उत्तम पाग कहां है।। (राठौर 2023:68)

भौतिकता की चका-चौंध व्यक्ति को अंधा बना देती है। इस भौतिकतावादी चका-चौंध से उत्पन्न वर्तमान समय की अंधी दौड़ में वैभव के आकर्षण ने मानव को इस प्रकार मानसिक अपंग बना दिया है कि वह अपनी सनातन परंपराओं से कोसों दूर हो गया है। परिणामस्वरूप आज न तो व्यक्ति में अपनी परंपराओं के प्रति आदर ही रह गया है और न वह अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति सचेत ही है। जिस भारतीय संस्कृति के प्रति संपूर्ण विश्व नतभाल होकर उसके गौरवशाली अतीत को प्रणम्य स्वीकार चुका है, उसी भारतीय सांस्कृतिक वैभव को अपने ही स्वजनों द्वारा तिरस्कृत पाकर प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति दांतों तले उंगली दबाने को मजबूर हैं। वर्तमान समय में मानव के हृदय में व्याप्त होते नवीन भौतिक उपमानों से प्रभावित होती संस्कृति को संरक्षित करने का प्रयास करती विधा 'सजल' अपनी गुणवत्ता में दिनों-दिन निखार ला रही है। विशुद्ध भारतीय

सांस्कृतिक विरासत के चिंतन से मंडित वैचारिक संपदा की संपोषक विधा सजल वर्तमान साहित्य जगत में एक नवीन धारणा का विकास करने में सफल हुई है। इसी संदर्भ में डॉ. अनिल गहलोत जी की एक सजल के कुछ पद एक दृष्टव्य हैं -

मरा आँख का पानी देखो।

दूषित हुई कहानी देखो।।

उगता सूर्य डरा-सहमा-सा।

तम ने चादर तानी देखो।।

डरता नहीं समय से मानव।

अट्टहास अभिमानी देखो।। (गहलौत 2022:105)

उपर्युक्त सजल के पदिकों में सजलकार ने वर्तमान समय के मानव की असंवेदनशीलता को स्पष्ट करते हुए कहा है कि आज का मानव पूरी तरह से मूल्य विहीन जीवन जी रहा है। उसे अपने किए पर पछतावा भी नहीं है। वर्तमान समय में मानवीय चरित्र पूरी तरह से दूषित हो चुका है। चारों ओर अज्ञानता का घना अंधेरा छाया हुआ है। ज्ञान की कोई नवीन किरण यदि इस अंधकार को मिटाने के प्रयास हेतु साहस जुटाए भी तो वह अपने आप के अस्तित्व के मिट जाने के भय से आक्रांत बनी रहती है। आज के मानव को समय की सामर्थ्य का भी भय नहीं रह गया है। वह अभिमान के इतने गहरे गर्त में जा पहुंचा है कि उसे अब आकाश की ऊंचाई भी दृष्टिगत नहीं होती। यानी कि सजलकार की चिंता संपूर्ण मानव जाति को लेकर प्रकट हुई है। वह इन सब विसंगतियों के अंत हेतु प्रतीक्षारत है और आशान्वित भी।

इस प्रकार सजल विधा में न केवल सामाजिक यथार्थ प्रदर्शन की वस्तु स्वीकारा गया है अपितु सजलकारों ने इन सभी विसंगतियों के उन्मूलन हेतु भी स्वयं का चिंतन प्रस्तुत किया है।

परिणाम स्वरूप सजल मानव उत्थान के नवजागरण हेतु नवीन आंदोलन के रूप में हिंदी साहित्य में उपस्थित हुई है।

निष्कर्ष :

हिंदी भाषा के वर्तमान वैभव को जो नवीन आकार मिला है, उसमें हिंदी साहित्य की गीतिकाव्य परंपरा का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय ज्ञान परंपरा के उत्कर्ष काल में भक्ति आंदोलन से लेकर रीतिकाल और वर्तमानकाल के संपूर्ण साहित्य में गीतिकाव्य की यह परंपरा सदैव ही गौरव संपन्न रही है। वर्तमान काल में जब हिंदी भाषा विदेशी भाषाओं के प्रभाव के कारण अपने अस्तित्व के संरक्षण के संकट में उलझी प्रतीत हुई तो ऐसे में एक बड़े क्रांतिकारी परिवर्तन की अपरिहार्य आवश्यकता अनुभूत हुई। इस आवश्यकता की आपूर्ति हेतु हिंदी गीतिकाव्य परंपरा में एक नवीन विधा 'सजल' का प्रादुर्भाव हुआ। यह विधा मानव कल्याण को सर्वोपरि स्वीकारते हुए मानवीय मूल्यों के संवर्धन एवं संरक्षण हेतु समर्पित भाव से अपना योगदान तो दे ही रही है साथ ही समस्त मानवीय संवेदनाओं को स्वयं में सहेजकर भाषाई गौरव को भी संरक्षण प्रदान कर रही है। जहां एक ओर उर्दू की विधा गजल के आकर्षण में आबद्ध हिंदी कवि अस्वीकृति के बाद भी अपनी हठधर्मिता को प्रमाणित करते हुए तथाकथित हिंदी गजल या इसी प्रकार के अन्य नामों से गजल का ही प्रतिरूप तैयार कर स्वयं में प्रसन्न हो लेने में ही सुख का अनुभव कर रहे थे, वहीं हिंदी भाषा तथा साहित्य के गौरव को संरक्षण प्रदान करने हेतु प्रकटी हिंदी गीतिकाव्य परंपरा की नवीन विधा 'सजल' ने हिंदी साहित्य को नवीन स्वरूप प्रदान किया है। यह विधा उर्दू गजल से प्रेरित विधा न होकर उस के सापेक्ष हिंदी की मौलिक विधा है। जिसका शिल्प विधान हिंदी के पारंपरिक छंदों पर आधारित है। अभिव्यक्ति, अभिकथन तथा संप्रेषणीयता के मौलिक स्वरूप में आबद्ध विधा उसी आकर्षण से परिपूर्ण है जिसके कारण हिंदी कवि उर्दू गजल की ओर आकर्षित होते रहे हैं। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि वर्तमान हिंदी साहित्य की गीतिकाव्य परंपरा में विकसित हुई नवीन विधा 'सजल' ने न केवल हिंदी साहित्य का उपकार किया है, अपितु हिंदी भाषा के मानकीकृत स्वरूप को संरक्षण प्रदान कर हिंदी भाषा पर भी उपकार किया है।

ग्रंथसूची :

'कनक', कृष्ण कुमार. तीसरी आँख और सजल. प्रथम संस्करण. फिरोजाबाद: अविकल्प प्राण प्रकाशन, 2023.

'कनक', कृष्ण कुमार. "हिंदी बोलियों में कृष्ण-काव्य." श्रीवास्तव, प्रो. संजीव कुमार. रसखान की प्रेमासक्ति. प्रथम संस्करण . फिरोजाबाद: अविकल्प प्राण प्रकाशन, 2022.

गहलौत, डॉ. अनिल. अँधेरा हार जाएगा. प्रथम संस्करण . मथुरा: जबाहर पुस्तकालय, 2022.

गौतम, लक्ष्मण दत्त. "विजय पर्व : ऋषि परंपरा का यात्रा." भाषा 6 (2002).

बाहरी, डॉ. हरदेव. राजपाल हिंदी शब्दकोश . दिल्ली: राजपाल एंड संज, 201`0.

माहौर, चंचल. कामायनी का बिंब विधान. प्रथम संस्करण. फिरोजाबाद: अविकल्प प्राण प्रकाशन, 2023.

मोहम्मद, प्रो. नजीर. "कबीर काव्य में राष्ट्रीय एकता तथा मानवतावादी तत्व." हिंदुस्तानी 50.3 (1989).

यायावर, डॉ. रामसनेही लाल शर्मा. जलती रेत : दहकता मरुस्थल. प्रथम संस्करण . आगरा, 2021.

राठौर, विजय. धूप की चिट्ठियाँ. प्रथम संस्करण. दिल्ली: सर्वप्रिय प्रकाशन, 2023.

सिंह, डॉ. अनुज प्रताप. "पूर्वी अवधी में संस्कार गीत." सम्मेलन पत्रिका 73.3-4 (n.d.).

संपर्क-सूत्र :

हिंदी शोधार्थी

महात्मा गांधी बालिका विद्यालय (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद

डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

चलभाष : 7017646795, 9259648428

ईमेल : kanakkavya@gmail.com

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका

अंक:7; जुलाई-दिसंबर, 2023; पृष्ठ संख्या : 52-63

होमेन बरगोहाञि कृत 'साउदर पुतेके नाओ मेलि याय' उपन्यास में मनोविज्ञान

करबी भूञाँ

शोध-सार :

असमीया साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में होमेन बरगोहाञि का नाम सबसे पहले आता है। उनके द्वारा लिखित बारह उपन्यासों में से तीन मनोवैज्ञानिक उपन्यास के अन्तर्गत आते हैं। 'साउदर पुतेके नाओ मेलि याय' उन्हीं में से एक है। कुछ विद्वानों ने इसे बरगोहाञि जी के आत्मकथात्मक उपन्यास के रूप में भी स्वीकार किया है। इस उपन्यास की पृष्ठभूमि एक गाँव है। 'बापुकण' उर्फ 'बिक्रम' उपन्यास का नायक है। पूरे उपन्यास में 'बापुकण' के बचपन से लेकर 'किशोर' अवस्था तक की कहानी है। किस प्रकार बच्चे धीरे-धीरे बड़े हो जाते हैं, साथ ही साथ किस प्रकार उनकी सोच में, विचार में, आचरण में परिवर्तन आता है और इन परिवर्तनों के कारण अन्तर्जगत में होनेवाली अस्थिरताओं को दिखाया गया है। बापुकण के जीवन के माध्यम से बचपन की सभी प्रवृत्तियों को उभारा गया है। बचपन में बच्चों के जीवन में 'दोस्त' जरूरी होते हैं, लेकिन वही दोस्त समय के साथ, माहौल के साथ बदलते रहते हैं। बचपन में जो चिंताएँ आती हैं वे चिंताएँ भविष्य को प्रभावित करती हैं। यह समय अस्थिर होता है। कुछ ऐसी चिंताएँ सताती हैं जिनके कारण जीवन में जटिलताएँ आ जाती हैं । चिंताओं को सकारात्मक या नकारात्मक रूप में लेना ही सबसे महत्वपूर्ण कदम बन जाता है, जो निजी जीवन के साथ ही समाज पर भी प्रभाव डालता है।

बीज शब्द : *उपन्यास,आत्मकथा,बापुकण, बचपन*

प्रस्तावना :

होमेन बरगोहाञि असमीया साहित्य जगत के एक ऐसे व्यक्तित्व हैं, जिनमें असमीया जन-जीवन की गहरी समझ है । वह एक साहित्यिक, शिक्षाविद, बुद्धिजीवी, पत्रकार एवं समाज सेवक हैं । उन्होंने असमीया जन जीवन के एक अभिभावक एवं मार्गदर्शक की भूमिका निभाई। अपनी

रचनाओं के माध्यम से असमीया साहित्य को समृद्ध किया । उनके द्वारा संपादित पत्रिकाएँ सकारात्मक बौद्धिक चिंतन मनन का महत्वपूर्ण आधार हैं । उन्होंने असमीया साहित्य-संस्कृति एवं पत्रकारिता जगत को महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। होमेन बरगोहाञि ने अपने साहित्यिक कर्म के माध्यम से असमीया साहित्य को समृद्ध किया है। साहित्य की प्रत्येक विधा पर उन्होंने कलम चलायी है । उपन्यास, कहानी-संकलन, कविता-संकलन, नाटक, आत्मजीवनी आदि लिखने के साथ-साथ कई पुस्तकों का सम्पादन भी किया हैं । कई पत्रिकाओं में उन्होंने सम्पादक के रूप में काम किया है । एक उपन्यासकार के रूप में उन्होंने असमीया उपन्यास साहित्य को बारह उपन्यास उपहार में दिए हैं। ये हैं- 'सुबाला' (1963), 'तान्त्रिक' (1967), 'कुशल'(1970), 'हालधीया चराये बाउधान खाय' (1973), 'पिता-पुत्र' (1975), 'तिमिर तीर्थ' (1975), 'अस्तराग' (1986), ' साउदर पुतेके नाओ मेलि याय' (1987), 'निसंगता' (2000), 'विषन्नता' (2002), 'एदिनर डायेरी' (2003), 'मत्स्यगंधा' । इसके अलावा पत्नी निरुपमा बरगोहाञि के साथ मिलकर 'पुवार पुरबी सन्धियार विभास' नामक उपन्यास सन्1971 ई. में प्रकाशित किया था। उनके जन्मदिन 7 दिसम्बर को असम में 'प्रज्ञा का दिन' के रूप में मनाया जाता है।

विश्लेषण :

फ्रायड के मनोविज्ञान से प्रभावित होकर पाश्चात्य के साथ साथ अनेक भारतीय साहित्यकारों ने अपने साहित्य में मनोविज्ञान को स्थान दिया। असमीया साहित्य में मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार के रूप में होमेन बरगोहाञि का नाम सबसे पहले आता है। होमेन बरगोहाञि द्वारा लिखित बारह उपन्यासों में से तीन उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यासों की कोटि में आते हैं। मनोवैज्ञानिक उपन्यास उन्हें कहा जाता है जिनमें पात्रों एवं चरित्रों की मनोदशाओं का वर्णन किया जाता है। होमेन बरगोहाञि कृत सन् 1987 में प्रकाशित ' साउदर पुतेके नाओ मेलि याय' उपन्यास में बाल मनोविज्ञान एवं युवा मनोविज्ञान को आधार बनाया गया है। इस उपन्यास का प्रमुख पात्र है 'बापुकण' उर्फ 'बिक्रम'। पूरा कथानक बापुकण' के बचपन और स्कूली जीवन एवं उनसे जुड़ी घटनाओं के इर्द-गिर्द घूमता है। उपन्यास के प्रारंभ में ही बरगोहाञि जी ने योगवशिष्ठ रामायण से

एक उद्धरण देते हुए कहा है कि बचपन में जो चिंताएँ हृदय को ग्रसित करती हैं, वे चिंताएँ यौवन, वृद्धावस्था, रोग, शोक एवं मृत्यु के समय में भी नहीं होती है। असल में बाल्यावस्था मृत्यु से भी ज्यादा पीड़ादायक होती है -

> बाल्यकालत यिबोर चिन्ताइ हृदयक कर्तित करे, यौवन, बार्धक्य, रोग,शोक-आनकि मृत्युर समयतो सेइबोर चिंता नाथाके। प्रकृतपक्षे शैशवदशा मृत्युतकैयो कष्टकर,सकलोरे अवज्ञार वस्तु आरु चांचल्यमय- योगवशिष्ठ रामायण। (बरगोहाञि 2014:5)

'साउदर पुतेके नाओ मेलि याय' उपन्यास में उपन्यासकार ने असम के ग्रामीण जीवन को आधार बनाकर बापुकण के माध्यम से बाल्यावस्था की चिंता, चेतना, उत्साह एवं उत्सुकताओं को मूर्त रूप दिया है। उपन्यास को दो भागों में विभाजित किया गया है और दोनों भागों में बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था के अलग अलग पहलुओं पर दृष्टि निक्षेप किया गया है।

उपन्यास की कथावस्तु :

उपन्यास का आरंभ आषाढ़ महीने में बापुकण की ग्रीष्मकालीन छुट्टी की एक दोपहर से होता है। बापुकण को पिता ने गणित के दस प्रश्न हल करने के लिए दिए थे। सुबह उसे बिना किए खेलने चले जाने की सजा के रूप में दोपहर को खाना खाने के बाद वे प्रश्न हल करने का आदेश दिया था। इस बात पर बापुकण अपने पिता पर गुस्सा होता है। उसने अपने दोस्त 'हेबाङ' के साथ खेत में जाकर मिर्च- नमक के साथ कच्चे आम खाने की योजना बना रखी थी। बापुकण के हिसाब से ग्रीष्मकालीन छुट्टी में भी अगर पढ़ना पड़ता है तो छुट्टी का कोई फायदा ही नहीं है। इतने में हेबाङ' वहाँ आ जाता है और बापुकण के पिता के सो जाने के बाद दोनों पीछे खेत की तरफ भागते हैं। दोनों नदी पार करके आम के पेड़ के पास पहुंच जाते हैं। उधर बापुकण के पिता उसे ढूँढते हुए वहाँ पहुँच जाते हैं और दोनों लड़के वहाँ से भाग जाते हैं। बापुकण जाकर पिता के डर से हेबाङ' की माँ के बिस्तर के नीचे छिप जाता है। पिता के जाने के बाद वह शर्म के मारे बिस्तर के नीचे ही पड़ा रहता

है और अपनी मृत्यु की कामना करता है। वहीं उसके मन में विभिन्न चिंताएँ आती हैं। उसकी बहन 'माखनी' की मृत्यु का दृश्य भी उसके सामने साकार हो उठता है।

उपन्यास का दूसरा भाग भी ग्रीष्मकालीन छुट्टी के एक दिन से ही प्रारंभ होता है। लेकिन तब तक बापुकण के जीवन में अनेक परिवर्तन आ चुके होते हैं। बापुकण सातवीं कक्षा तक पहुँच जाता है। 'दुलाल' दोस्त के रूप में उसके जीवन में आ जाता है। दुलाल उस गाँव में आये दारोगा का बेटा है। दुलाल पढ़ने में तेज है, उसे सृजनात्मक कामों में अत्यन्त रुचि है। दुलाल से मिलने के बाद बापुकण के जीवन में अनेक परिवर्तन आ जाते हैं। वह किताबों के साथ ही समय बिताने लगता है । अब उसे हेबाङ के साथ रहने से ज्यादा दुलाल का साथ अच्छा लगता है। वह खेल-तमाशा छोड़कर कविता पढ़ने लगता है। नदी में तैरने से ज्यादा तट पर अकेले बैठना पसंद करने लगता है। दुलाल के साथ मिलकर गाँववालों के सहयोग से गाँव में एक 'लाइब्रेरी' खोली जाती है। इन सबके बीच ही पड़ोसी नवीन के घर आनेवाली 'रेणु' नाम की लड़की के प्रति उसके हृदय में प्रेम का बीज अंकुरित होता है। उसके लिए वह ढेर सारी कविताएँ लिखता है। लेकिन 'ब्रह्मचर्य' नामक किताब पढ़ने के बाद उसे लगता है कि बचपन में प्यार करके उसने बहुत बड़ा पाप कर दिया है और इस पाप के डर से 'रेणु' को दिल से निकाल देता है। इन सबके बीच में ही एक दिन बापुकण को पिता बताता है कि उसे 'हाईस्कूल' की पढ़ाई के लिए शहर जाना पड़ेगा। क्योंकि गाँव के स्कूल में शिक्षकों का अभाव है, दो ही शिक्षक पढ़ाते हैं। यह बात सुनने के बाद बापुकण खुशी से झूम उठता है। क्योंकि शहर जाकर पढ़ना उसका सपना था, लेकिन उसने खुलकर कभी पिता से नहीं बताया। बापुकण को लगा ही नहीं था कि एक दिन पिता बिन कहे उसके दिल की बात समझ जाएँगे। यह खबर सुनने के पश्चात्त उसका मन अस्थिर हो उठता है। एक तरफ शहर जाकर सपना पूरा करने की खुशी और दूसरी तरफ अपने प्यारे गाँव, घर, परिवार, गाँव की नदी, पेड़, धूल-मिट्टी इन सबसे दूर हो जाने की पीड़ा उसे सताने लगती हैं। बापुकण के मन की इन्हीं दुविधाओं के साथ उपन्यास समाप्त होता है।

उपन्यास का शीर्षक इस उपन्यास की कथा का संकेत देता है। 'साउद' का मतलब होता है 'व्यापारी'। जिस प्रकार 'साउद' नाँव लेकर 'बणिज' (व्यापार) के लिए जाता है तो यह उम्मीद रखी जाती है कि लौटते वक्त ढेर सारा धन लेकर आएगा। उसी प्रकार गाँव का लड़का शहर में जाकर पढ़ाई करके ज्ञान और अनुभव से पुष्ट होकर वापस आएगा और गांव की अज्ञानता के अंधेरे को ज्ञान की रोशनी से दूर करेगा ।

उपन्यास में चित्रित मनोविज्ञान :

'साउदर पुतेके नाओ मेलि याय' उपन्यास एक सौ बीस पृष्ठों का छोटे कलेवर का उपन्यास है। यहाँ आदि से अन्त तक रोचकता बनी रहती है। इसमें बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था की अलग-अलग मनोदशाओं को पाठकों के सामने रखा गया है। दोस्त को ही जीवन में सब कुछ मानने से लेकर सपनों के पीछे भागना, अपने को श्रेष्ठ दिखाने की अदम्य इच्छा, मृत्यु की चिंता, लज्जा, शंका, प्रेम को लेकर उलझनें, समाज के लिए कुछ करने का उत्साह आदि सभी प्रवृत्तियों को 'बापुकण' के माध्यम से हमारे सामने प्रस्तुत किया गया है। साथ ही साथ जीवन के प्रत्येक पड़ाव पर किस प्रकार एक बच्चा अन्तर्द्वन्द का सामना करता है, मन में लहरों जैसे उठनेवाले हजारों प्रश्नों का हल मन ही मन में ढूँढ़ता है और किस प्रकार माता-पिता, भाई-बहन और दोस्तों के होते हुए भी अकेला महसूस करता है, इन सभी बातों को दिखाया गया है।

उपन्यास के प्रथम भाग में गाँव में पला-बढ़ा एक बच्चा बापुकण अपने दोस्त हेबाङ के साथ नजर आता है। हेबाङ एक अनपढ़, बिन बाप का लड़का है। पढ़ाई के प्रति एकदम ध्यान न देनेवाला हेबाङ मछली पकड़ना ,चिड़िया मारना, नदी में तैरना, पेड़ पर चढ़ना आदि कामों में कुशल है। हेबाङ के साथ रहता हुआ बापुकण दुनिया से बेखबर था। पढ़ाई के नाम से चिढ़ जाता था। सुबह से शाम तक वह हेबाङ के साथ नदी में तैरना, जंगल में जाकर फल लाना आदि में ही जीवन का आनंद ढूँढ़ता फिरता था। बापुकण की तुलना में हेबाङ' इन सब कामों में कुशल था। बापुकण ने उसे अपना

गुरु भी मान लिया था। गाभिन कुतिया को देखकर हेबाङ' कह सकता है बच्चे कब होंगे, कितने बच्चे होंगे।

बचपन में बच्चे निर्बोध होते हैं। उन्हें अच्छे-बुरे का खयाल नहीं रहता है। जब आषाढ़ महीने में दोपहर की कड़ी धूप और गर्मी में बापुकण को पिता गणित के दस प्रश्नों का हल करने के लिए देते हैं तो वह मन ही मन अपने पिता की मृत्यु की कामना करता है। बापुकण के दोस्त हेबाङ और नोमल के पिता नहीं हैं। इसलिए वे जब जो चाहे कर सकते हैं। बापुकण मन ही मन यह कामना करता है कि अगर उसके भी पिता नहीं रहेंगे तो वह भी आजाद होगा -

> बापुकणर देउताको यदि मरि जाय, तेन्ते सिउ हेबाङ आरु नोमलर निचिनाकै स्वाधीन हब । (बरगोहाञि 2014:12)

भावार्थ - बापुकण के पिता भी अगर मर जाते तो वह भी हेबाङ' और नोमल की तरह स्वाधीन होगा ।

यह सोचने के तुरंत बाद ही बापुकण सचेत हो उठता है, गलती का अहसास होता है और अपने पाप के लिए भगवान से माफी मांगता है -

> हे भगवान! हे भगवान! मोक माफ करा। मइ बहुत डांङर पाप कथा भाबिचो (बरगोहाञि 2014: 12)

भावार्थ- हे भगवान मुझे माफ कर दीजिए। मैं बहुत बड़ा पाप सोच रहा हूँ।

बचपन में लाज और शंका दोनों एक साथ चलते हैं। बापुकण एक दिन पिता के डर से जाकर हेबाङ की माँ के बिस्तर के नीचे घुस गया था। पिता से जो डर था वह उसी समय खत्म हो गया था, लेकिन उसकी जगह लज्जा ने ले लिया था। बिस्तर के नीचे छिपने के बाद उसे यह ध्यान आता है कि अब हेबाङ और उसकी माँ के सामने कैसे मुँह दिखाएगा। एक लड़का होकर औरत के बिस्तर

के नीचे छिपता है। अगर यह बात उसके दोस्तों को पता चल जाए तो सबके सामने उसकी नाक कट जायेगी। इसलिए वह सोचता है कि मरने तक वह उसी बिस्तर के नीचे रहेगा। तभी उसकी आँखों के सामने अपनी मृत्यु के दृश्य आने लगते हैं। अपने पिता से बदला लेने के बारे में सोचकर वह रोमांचित हो जाता है। अगर वह मर गया तो माँ की हालत क्या होगी, पिता कैसे गम्भीर हो जाएँगे और बहन कैसे उसको रोती हुई बुलाएगी, ये सब सोचकर वह एक अलग तृप्ति महसूस करता है। फिर उसके मन में यह खयाल आता है कि उसकी मृत्यु के बाद क्या होगा, यह तो वह देख नहीं पाएगा। अगर वह देख ही नहीं पाएगा तो मरकर क्या फायदा -

> हठात् एबार तार मनलै भाब आहिल ये सि यदि सचाकैये मरि याय तेंते तार मृत्युशोकत माक- देउताके बुकु भांगि कन्दार दृश्य सि केनेकै चाबलै पाब? आरु ताकेइ यदि चाबलै नापाय, तेंते मरार फलत तार लाभतो कि हब? (बरगोहाञि 2014:47)

भावार्थ- अचानक उसके मन में आया कि अगर वह सच में मर जाता है तो उसके मृत्यु शोक में माँ-पिता के बिलख-बिलख कर रोने का दृश्य वह कैसे देखेगा? और अगर वही देखने को नहीं मिलेगा तो मरकर क्या फायदा होगा?

उपन्यास के दूसरे भाग में बापुकण के दोस्त के रूप में 'दुलाल' का प्रवेश होता है। वह दारोगा का बेटा है। पिता के साथ अलग-अलग जगहों को उसने देखा है। वह पढ़ने में तेज होने के साथ-साथ कविता लिखने जैसे कामों में भी रुचि रखता है। बापुकण और दुलाल दोनों सातवीं कक्षा में पढ़ते हैं। दोनों एक साथ स्कूल जाते हैं, स्कूल से आने के बाद शाम को नदी के किनारे घूमने जाते हैं। दुलाल से मिलने के बाद बापुकण के जीवन में अनेक परिवर्तन आने लगते हैं। वह हेबाङ का साथ छोड़ देता है। दुलाल के साथ भविष्य के बारे में बातें करता है, कविता लिखने लगता है और दोनों कक्षा में अच्छे विद्यार्थी के रूप में पहचाने जाते हैं।

किशोर अवस्था में शारीरिक विकास के साथ-साथ मानसिक परिपक्वता भी आने लगती है। ये बापुकण के चरित्र के माध्यम से भी प्रकट होता है। बापुकण और दुलाल भविष्य के रंगीन सपने देखते हैं। समाज के प्रति दायित्वों को समझते हैं। दोनों गाँव में एक 'लाइब्रेरी' खोलने की योजना बनाते हैं। गाँव के एकमात्र साहित्य के प्रति रुचि रखनेवाले व्यक्ति जोगेन गगै हैं । उनके मार्गदर्शन और गाँववालों की सहायता से वे सफल होते हैं। गाँव में हरगोबिन्द बरुवा के नाम से पहला लाइब्रेरी 'हरगोबिन्द लाइब्रेरी' खुल जाती है। साथ ही 'लाइब्रेरी' की अच्छी तरह से देखभाल करने के लिए 'मुकुल संघ' की भी स्थापना की जाती है।

> एइ प्रथम तेओँलोके समजुवाकै एटा लाइब्रेरी घर साजि पाले।...
>
> गाँवखनलै एटा नतुन युग अहा येन अनुभव करि गाँवखनर डेका- बुढ़ा
>
> सकलो मानुहे एटा नतुन धरनर रोमांस अनुभव करिबलै धरिले ।
>
> (बरगोहाञि 2014:114-115)

भावार्थ- पहली बार उनलोगों ने एकसाथ मिलकर एक लाइब्रेरी बनायी। गाँव में एक नया युग आने जैसा अनुभव करके गाँव के जवान-बूढ़े सबने एक नया रोमांच अनुभव करना शुरू किया ।

विपरीत लिंग के प्रति आकर्षण किशोरावस्था की प्रवृत्ति है। बापुकण के जीवन में भी यह समय आने में देर नहीं हुई। बापुकण एक दिन पड़ोसी दोस्त नवीन के घर गया था। वहीं उसने 'रेणु' नामक लड़की को पहली बार देखा। उसे देखने के बाद बापुकण के मन में, हृदय में हलचल होने लगी । स्कूल जाकर दुलाल से मिलकर भी उसे चैन नहीं मिला। 'रेणु' की आँखें, उसकी हँसी ने बापुकण को कविता लिखने पर मजबूर कर डाला। स्कूल से आकर रातभर सबसे छिपकर वह कविता लिखता रहा। चार-पाँच कॉपियाँ कविता से भर गईं । उसके मन में यह भी डर रहता है कि अगर माँ और पिता कविताओं को पढ़ लेंगे तो क्या सोचेंगे? इसलिए उन कॉपियों को उसने सावधानी से रखा था। लेकिन वह एक दिन अचानक 'ब्रह्मचर्य' नामक किताब दुलाल के घर से लाकर पढ़ता है। उसे

पढ़ने के बाद वह 'रेणु' के बारे में सोचने से भी डरने लगता है। उसके मन में यह डर बैठ जाता है कि बाल्यकाल में प्रेम करके उसने पाप किया है। उस दिन से दुबारा वह 'रेणु' की तरफ नहीं देखता। लेकिन उसे लगता है कि रेणु को भूलने से जीवन का कोई अर्थ ही नहीं रहेगा। इस तरह अपने मन में ही वह एक कुरूक्षेत्र का युद्ध लड़ने लगता है।

> 'ब्रह्मचर्य' पढ़ि तार मनत निश्चित धारणा हल जे सि निश्चय पापी;
> दिने रातिये नारी चिन्ता करि सि निश्चित ध्वंसर मुखलै आगबाढ़िचे।
> किन्तु रेणुर जिखन मुखे ताक गभीरतम आनन्द आरु पवित्रतम वेदनारे
> स्वर्ग मर्त्यर माजत दोलायित करे
> सेइ रेणुक बाद दि तार जीवनर अर्थइ बा कि? (बरगोहाञि 2014:114)

भावार्थ- ब्रह्मचर्य पढ़ने के बाद उसके मन में यह धारणा बद्धमूल हुई कि वह निश्चय ही पापी है; दिन- रात नारी विषयक चिन्ता करके वह ध्वंस की तरफ बढ़ रहा है। लेकिन रेणु के जिस चेहरे ने उसे गहन आनन्द और पवित्रतम वेदना का अनुभव कराकर स्वर्ग और नरक के बीच झुलाया है, उस रेणु का त्याग करने पर उसके जीवन का क्या अर्थ ही रह जायेगा?

बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था दोनों ही कल्पनाप्रवण होते हैं। इस आयु में लोग वर्तमान और भविष्य को कल्पना के सहारे जीते हैं। बापुकण भी मानो अपनी एक अलग दुनिया में रहता था। घर की लाइब्रेरी में किताब ढूँढ़ते समय उसके पिता की जनम-कुण्डली हाथ लग गयी थी , उसे पढ़ने के बाद उसे पता चलता है कि पिता के पचास साल होने पर उनकी पत्नी की यानी बापुकण की माँ की मृत्यु होगी। यह बात जानने के बाद बापुकण माँ विहीन जीवन की कल्पना करके परेशान हो जाता है। यह बात वह किसी को नहीं बताता और मन ही मन माँ के लिए तड़प उठता है।

> तेन्ते अहा दुबसरर भितरत जिकोनो एदिन आनकि काइलैको - माकर
> मृत्यु निश्चित? एइ पृथिवीत बिक्रमर माक नाइ- अथस पृथिवीखन

आचे- एने कथा बिक्रमे सपोनतो भाबिब पारेने? अथस सोवरणिततो स्पष्टकै लिखा आचे जे देउताकर पंचास बछर नौ हउतेइ बिक्रमर माक मरिबइ। माक नाथाकिले सि केनेकै जीयाइ थाकिब?" (बरगोहाञि 2014:88)

भावार्थ- तो फिर अगले दो सालों के अन्दर किसी भी दिन बल्कि कल भी - मां की मृत्यु निश्चित है? इस पृथ्वी पर बिक्रम की माँ नहीं है – फिर भी यह पृथ्वी है - ऐसी बात बिक्रम सपने में भी सोच सकता है क्या? फिर भी कुण्डली में तो स्पष्ट रूप से लिखा है कि पिता के पचास साल होने से पहले ही बिक्रम की माँ मरेगी ही। माँ के बिना वह कैसे जिंदा रहेगा?

उपन्यास के अन्तिम चरण में बापुकण को पिता से पता चलता है कि वह हाईस्कूल की पढ़ाई के लिए शहर जानेवाला है। यह बात जानने के बाद वह कल्पना करने लगता है कि किस प्रकार उसे सबकुछ छोड़कर जाना होगा, जो अभी तक उसका अपना था। उसे उस गाँव को छोड़ना होगा, जहाँ बचपन बिताया, उस नदी को छोड़कर जाना होगा, जहाँ मन भरकर वह तैरा है, जिससे अपने मन की बात की है। वह रास्ता, हर एक चिड़िया जिसे वह पहचानता है, पेड़- पौधे सब कुछ छोड़कर जाना होगा। यही सब सोचकर वह निद्राहीन रात बिताता है। सुबह उठकर वह आकाश की तरफ देखकर सोचता है कि वह आकाश भी उसके साथ नहीं होगा, उसे एक अनजान आकाश के नीचे रहना होगा। सुबह पेड़ से टपकते कुहासे की बूंद की मधुर आवाज भी उसे और सुनने नहीं मिलेगी। खेत- खलिहान, गौ-चरानेवाले लड़के ये सब कुछ दिन बाद उसके हृदय से दूर होंगे। यही सब सोचते-सोचते वह दुखी हो जाता है । अंत में शहर जाने से पहले वह नम आंखों से सबसे विदा लेता है।

ज्ञान हबर दिन धरि तोमालोक आछिला मोर प्राणर संगी। पृथिवीखन तो सदाय सलनि है थाके। कोने जाने तोमालोके एके ठाइते थाकिबा ने

नाथाका। मइ केतियाबा आहि तोमालोकक देखिम ने नेदेखिम।

विदाय! (बरगोहाञि 2014:119)

भावार्थ- जब से मुझे समझ हुई है, तब से तुमलोग मेरे प्राणों के साथी रहे हो। पृथ्वी तो हमेशा बदलती रहती है। कौन जानता है कि तुमलोग एक ही जगह पर रहोगे या नहीं। मैं कभी आकर तुम लोगों को देख पाऊँगा या नहीं । अलविदा!

निष्कर्ष :

'साउदर पुतेके नाओ मेलि याय' उपन्यास का मनोवैज्ञानिक दृष्टि विश्लेषण एवं समीक्षा करने के बाद इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि जीवन में संगति का बहुत असर होता है । उपन्यास के दोनों भागों में बापुकण के जीवन की अलग-अलग अवस्थाओं में दो अलग-अलग दोस्तों के सान्निध्य के कारण उसके जीवन का स्वरूप और गतिविधियाँ अलग-अलग हो जाती हैं । बचपन में हमारी रुचि, चिंता एवं आचरण समय के साथ- साथ परिवर्तित होती रहती है। इसमें संगति का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है । बाल्यवस्था एवं किशोरावस्था हमारे जीवन का अनुपम हिस्सा है। इन अवस्थाओं में मानसिक और शारीरिक परिवर्तन एवं परिवर्द्धन होते हैं। सोच, चिन्तन, रुचि आदि में बदलाव आते हैं। इन्हीं पहलुओं को ध्यान में रखकर लिखा गया असमीया ग्रामीण जीवन पर आधारित यह एक सफल एवं लोकप्रिय उपन्यास है।

ग्रंथसूची :

बरगोहाञि, होमेन. साउदर पुतेके नाओ मेलि याय. सोलहवाँ संस्करण. गुवाहाटी : स्टूडेंट्स स्टोर्स,2014

संपर्क-सूत्र :

शोधार्थी,हिन्दी विभाग

मणिपुर विश्वविद्यालय

Karobikalita35214@gmail.com

चलभाष : 9085978265

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका

अंक:7; जुलाई-दिसंबर, 2023; पृष्ठ संख्या : 64-72

ग्रामीण स्त्री जीवन के संदर्भ में शिवमूर्ति की कहानियाँ

प्रिया साहू

शोध-सार :

घर-परिवार तथा बाहरी लोगों द्वारा किया गया अत्याचार,जातिगत शोषण, अंधविश्वाश,उत्पीड़न आदि ने स्त्रियों के जीवन पर व्यापक प्रभाव डाला है। शिवमूर्ति की कहानियों में स्त्री की इन व्यथाओं का व्यापक चित्रण किया गया है। यह व्यथा केवल मात्र एक स्त्री की नहीं, बल्कि सम्पूर्ण स्त्री जाति की व्यथा है, जिसका संबंध किसी-न-किसी रूप में उनसे है । लेकिन बदलते परिवेश के साथ-साथ उनके साथ हो रहे शोषण का विरोध कर रही है, उनके विरुद्ध आवाज उठा रही हैं। शिवमूर्ति द्वारा लिखी गयी कसाईबाड़ा, अकालदण्ड, कुच्ची का कानून, तिरिया चरित्तर, सिरी उपमा जोग, केशर कस्तुरी आदि कहानियों में एक स्त्री की जीवन के विभिन्न स्थितियों का चित्रण किया है। एक स्त्री जिस पर एक साथ दोहरी शोषण की मार पड़ती है, एक ओर घर-परिवार के लोगों से वह शोषित होती है तो दूसरी ओर समाज के लोग भी उनका शोषण करते है। शिवमूर्ति अपनी कहानियों में स्त्रियों के साथ हो रहे अन्याय के चित्रण साथ-साथ उनमें साहस,आत्मविश्वास स्थापित करना चाहते हैं ।

बीज-शब्द: *शिवमूर्ति, ग्रामीण, स्त्री, कहानी, शोषण*

प्रस्तावना :

समकालीन कहानीकारों में शिवमूर्ति का महत्वपूर्ण स्थान है। ग्रामीण जनजीवन, किसानों, मजदूरों, स्त्रियों तथा दलितों की दयनीय स्थिति, शोषण आदि को प्रभावशाली ढंग से चित्रित करने वाले कहानीकारों में शिवमूर्ति का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अपनी कहानियों में ग्रामीण जीवन के यथार्थ का बखूबी चित्रण किया है। शिवमूर्ति की कहानियों में ग्राम्य-जीवन के अनेक पहलुओं को देखा जा सकता हैं। ग्राम्य समाज की संस्कृति, वहाँ का रीति-रिवाज, लोगों के रहन-सहन, जीवन जीने के तरीके, ग्रामीण जीवन की समस्याओं, वहाँ की जटिलताओं, भाषा-शैली आदि अनेक पहलुओं का जीवंत वर्णन उनकी कहानियों में देखा जा सकता है। वे समाज के शोषित, उपेक्षित वर्गों

की पीड़ा को समझते हैं, व्यथित होते हैं तथा उनकी पीड़ा को अपनी कहानियों के पात्रों के माध्यम से व्यक्त करते हैं। इनकी रचनाओं में 'केसर कस्तूरी' और 'कुच्ची का कानून' नामक दो कहानी संग्रह तथा 'त्रिशूल', 'तर्पण', 'आखिरी छलांग' नामक तीन उपन्यास प्रमुख हैं। अपनी कहानियों में नारी-जीवन को केंद्र में रखकर लिखनेवाले कहानीकारों में शिवमूर्ति का नाम अन्यतम है। इनकी कहानियों की स्त्री पात्र अपने स्थिति के प्रति त्रस्त होकर सिर्फ रोती-बिलखती नहीं है, न ही भयभीत होकर उसे अपना भाग्य या नियति मानती है। अपने सम्मुख आनेवाली हरेक चुनौती का वह डटकर सामना करती है, उसके विरुद्ध आवाज उठाती है तथा उसका प्रतिरोध करना जानती है। और इस क्रम में कभी वह माँ रूप में, तो कभी पत्नी रूप में तो कभी सामान्य स्त्री के रूप में हमारे सामने आती है। 'कसाईबाड़ा' कहानी की सनिचरी, 'अकालदण्ड' की सुरजी, 'तिरिया चरित्तर'की विमली आदि स्त्री पात्र अपने अधिकारों के प्रति सजग होती हैं।

विश्लेषण :

शिवमूर्ति की अधिकतर कहानियों के पात्र ग्रामीण परिवेश से हैं । ग्राम्य जीवन में आर्थिक विपन्नता, अंधविश्वास-कुरीतियाँ, जातिगत शोषण आदि अनेक समस्याएँ देखी जाती हैं । शिवमूर्ति की प्रसिद्ध कहानी 'अकालदण्ड' की स्त्री पात्र सुरजी विवश होकर भी अपने आत्मसम्मान को नहीं छोड़ती है। जहाँ गाँव में पड़े अकाल के कारण लोग दाने-दाने के लिए तरसते हैं,ऐसी स्थिति में सूरजी को सेक्रेटरी पैसे का लोभ दिखाता है, सुरजी को पाने की लालसा से उसका रास्ता रोकता है। और जब सुरजी सेक्रेटरी की बातों में नहीं आती है, तब उसके घर में घुसकर दुष्कर्म करने की कोशिश करता है, लेकिन सुरजी सेक्रेटरी के आगे नहीं झुकती है और उसे जवाब देते हुए कहती है –

> भलमानसी चाहौ तो अब चुप्पै भाग जाव। नाही त अबही गोहर लगा देब
> त तोहार भद्दरा (भद्रता) उतरि जाए। (शिवमूर्ति: 2022:36)

सुरजी के इस व्यवहार से सेक्रेटरी आगबबूला हो वहाँ से चला जाता है, लेकिन अपनी असफलता को सेक्रेटरी स्वीकार न कर अहंकारवश सुरजी को बर्बाद करना चाहता है। और इन सबमें रंगीबाबू सेक्रेटरी का साथ देता है, वह सुरजी के दु:खद स्थिति को भली-भांति जानता है लेकिन फिर भी सेक्रेटरी के आज्ञा का पालन करता है और सुरजी को सेक्रेटरी के जगह पर बुलाता

है। लेकिन यहाँ भी सुरजी का क्रांतिकारी रूप सामने आता है, वह अपने आत्मसम्मान की रक्षा करती है, अपने स्वाभिमान का समझौता न करते हुए वह सेक्रेटरी से विद्रोह करती है और उसका बदला वह सेक्रेटरी का नाजुक अंग काट कर लेती है, जिसका वर्णन करते हुए लेखक कहते है–

> अंदर का दृश्य बड़ा भयानक है। सेक्रेटरी बाबू पलंग पर नंग-धड़ंग पड़े छटपता रहे है। सुरजी ने हँसिए से उनकी देह का नाजुक हिस्सा अलग कर दिया है और पिछवाड़े के रास्ते भागकर अंधेरे में गुम हो गयी है। (शिवमूर्ति: 2022:54)

आमतौर पर समाज में यह धारणा रहती है कि गरीब और निचले तबके के लोग अपने सम्मान के प्रति सजग नहीं होते हैं, वे अपने दु:ख के आगे विवश होकर किसी के जाल में फंस जाते हैं, लेकिन कथाकार शिवमूर्ति ने समाज की इस धारणा का खंडन करते हुए सुरजी के माध्यम से यह दिखाया है कि किसतरह सुरजी अकेले साहसपूर्वक सेक्रेटरी के अभद्र आचरण का विरोध करती है, उस पर प्रहार करती है जिससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियाँ अब अपने ऊपर हो रहे शोषण को, अन्याय को सहन नहीं करेंगी।

शिवमूर्ति की अन्य एक प्रसिद्ध कहानी 'कसाईबाड़ा' की नायिका सनिचरी ग्राम-प्रधान और लीडर से शोषित होती है। अपने स्वार्थ-पूर्ति के लिए ग्राम-प्रधान सनिचरी की बेटी रूपमती को सामूहिक विवाह कराने के बहाने बेच देता है और ग्राम-प्रधान का प्रतिद्वंदी लीडर इसका लाभ उठाते हुए सनीचरी को अनशन करने के लिए उकसाता है। अपनी बेटी रूपमती को वापस लाने के लिए सनिचरी प्रधान के चौखट पर दिन-रात भूखे-प्यासे बैठी रहती है, प्रधान से विद्रोह करती हुई सनिचरी कहती है –

> मोर बिटिया वापस कर दे बेईमनवा,मोर फूल ऐसी बिटिया गाय-बकरी के नाई बेचि तिजोरी भरै वाले ! तोरै अंग-अंग से कोढ़ फूटि कब बदर-बदर चूई रै कोढ़िया...।"(शिवमूर्ति: 2022:20)

सनिचरी के इसी मजबूरी का फायदा लीडर उठाता है और धोखे से सनिचरी के अंगूठे का निशान लेकर उसके दो बीघा खेत अपने नाम करवा लेता है। समाज के शिक्षित, सभ्य कहे जाने

वाले लोगों द्वारा सनिचरी के चरित्र पर उँगली उठाई जाती है। 'अधरंगी' जिसे गाँव के लोगों ने अधपगला घोषित किया है, वह सनिचरी के साथ हो रहे षड़यंत्र को समझता है। कहानीकार यहाँ दिखाते है कि किसतरह एक अधपगला सनिचरी के व्यथा को समझ सकता है, वहीं दूसरी ओर समाज के शिक्षित, भद्र कहे जानेवाले लोग, जिसका प्रतिनिधित्व लीडर, दारोगा, ग्राम-प्रधान जैसे लोग करते हैं, वे सनिचरी को लूटने में, उसके शोषण करने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं। सनिचरी मरते दम तक अपने दृढ़ संकल्प से पीछे नहीं हटती और अपनी बेटी को वापस लाने का भरसक प्रयत्न करती है । परंतु अंततः वह इस काम में सफल नहीं हो पाती और दम तोड़ देती है। ग्राम-प्रधान की पत्नी अपने पति द्वारा किए गए कार्यों का तीव्र विरोध करती हुई कहती है –

> ई गाँव लंका है । इहाँ लंका दहन होवेगा। रावण तू ही हो। लीडर बना है भिखारिन। तोहरे दोनों के चलते गाँव का सत्यानाश होई रहा है। बहिन बिटिया बेचो। हमहूँ का बेचि लेव। रूपया बटोरो। साथ ले जायेब,लेकिन अब हम एहि घरे मा ना रहब। आपन बेटवा लइके भीखकौरा माँगब, मुला। (शिवमूर्ति: 2022:22)

यहाँ पत्नी ग्राम-प्रधान के अनैतिक कार्यों का विरोध करती हुई सामने आती है, वह पति के सही-गलत हरेक कार्य को न सिर्फ सच नहीं मानती है बल्कि साहसपूर्वक पति के गलत कार्यों का विरोध करती हुई उसके साथ रहने से भी इंकार करती है। वहीं दूसरी ओर लीडर की पत्नी भी लीडर का सनिचरी के साथ किए गए छल का तीव्र विरोध करती है। वह ग्राम-प्रधान तथा अपने पति को कसाई के साथ तुलना करते हुए कहती है–

> तुम लोग कसाई हो। सारा गाँव कसाईबाड़ा है। मैं नहीं रहूंगी इस गाँव में। (शिवमूर्ति: 2022:24)

यहाँ ग्राम-प्रधान की पत्नी तथा लीडर-पत्नी दोनों कसाईरूपी अपने पतियों का विरोध करती है, जो उन स्त्रियों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो सही-गलत कार्य में फर्क करने में सक्षम हैं, जो गलत कार्यों में अपनी असहमति प्रकट करने का साहस रखती हैं। शिवमूर्ति यहाँ ग्रामीण समाज की स्त्रियों में आए बदलाव को दिखाते हैं।

'सिरी उपमा जोग' नामक कहानी में कहानीकार शिवमूर्ति ने एक ऐसे पात्र का चित्रण किया है जो ए.डी.एम बनते ही अपने गाँव में रहनेवाली पत्नी और संतान को भूल जाता है और शहर जाकर खुद को 'अनमैरिड' बताकर दूसरा विवाह करता है। जब उसके पास कुछ भी नहीं था तब उसकी ग्रामीण पत्नी ने अनेक कठिनाइयों को झेलते हुए भी उसका साथ दिया लेकिन ज्यों ही वह ए.डी.एम बन जाता है तब उसे अपनी पत्नी अनपढ़ और गँवारू लगने लगती है। कहानी की नायिका यानी लालू की माँ बहुत ही परिश्रमी, स्वाभिमानी, साहसी स्त्री है, जिसके बारे में कहानी का नायक स्वयं बताते हुए कहता है –

> बहुत गरीबी के दिन थे, जब उनका गौना हुआ था। इंटर पास किया था उस साल। लालू की माई बलिष्ठ कद-काठी की हिम्मत और जीवट वाली महिला थी, निरक्षर लेकिन आशा और आत्मविश्वास की मूर्ति। उसे देखकर उनके मन में श्रद्धा होती थी उसके प्रति। इतनी आस्था हो जिंदगी और परिश्रम में तो संसार की कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं रह सकती। बी.ए. पास करते-करते कमला पैदा हो गयी थी। उसके बाद बेरोजगारी के वर्षों में लगातार हिम्मत बंधाती रहती थी। अपने गहने बेचकर प्रतियोगिता परीक्षा के शुल्क और पुस्तकों की व्यवस्था की थी उसने।...रोज सबेरे ताजी रोटी बनाकर उन्हें खिला देती और खुद बासी खाकर लड़की को लेकर खेत पर चली जाती थी। एक बकरी लाई थी वह अपने मायके से, जिससे उन्हें सबेरे थोड़ा दूध या चाय मिल सके। रात को सोते समय पूछती, अभी कितनी किताब और पढ़ना बाकी है, साहबी वाली नौकरी पाने के लिए। (शिवमूर्ति: 2022:58)

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि एक स्त्री जो अपना सबकुछ न्यौछावर कर दे फिर भी उसके नसीब में सुख भोगना नहीं रहता है। लालू की माँ को अपने पति से सिर्फ दूर रहना ही नहीं पड़ता साथ ही अपने पति के घरवालों का भी अत्याचार सहना पड़ता है। अपने पति की दूसरी शादी को भी वह सहज रूप से स्वीकार कर लेती है और पति के साथ आगे नहीं जाने का कारण भी खुद को ही मानती है –

> मैं तो आपके साथ रहने लायक भी नहीं हूँ। (शिवमूर्ति: 2022:60)

इतना सब होने के बावजूद उसमें जिजीविषा है, वह अपनी आन को छोड़ना नहीं चाहती, अपने बच्चे को पिता से भी बड़ा अफसर बनाना चाहती है। इसके विपरीत नायक को अपने कार्यों के लिए पश्चताप होता है। वह स्वयं कहता है –

> क्या मिला उसको उन्हें आगे बढ़ाकर ? वे बेरोजगार रहते, गाँव में खेती-बारी करते। वह कंधे से कंधा भिड़ाकर खेत में मेहनत करती। रात में दोनों सुख की नींद सोते। तीनों लोकों का सुख उसकी मुट्ठी में रहता। छोटे से संसार में आत्मतुष्ट हो जीवन काट देती। उन्हें आगे बढ़ाकर वह पीछे छुट गई। माथे का सिंदूर और हाथ की चूड़ियाँ निरंतर दुख दे रही हैं उसे। (शिवमूर्ति: 2022:61)

यहाँ लालू की माँ शारीरिक और मानसिक रूप से सताई जाती है। मानवीय संवेदना का क्षरण होने का ऐसा मार्मिक चित्रण शिवमूर्ति की कहानियों में बड़े ही सफलतापूर्वक दिखाया गया है।

शिवमूर्ति की अन्य एक प्रमुख कहानी 'तिरिया चरित्तर' की स्त्री पात्र विमली भी अपने आत्माभिमान से समझौता नहीं करती। पिता-सम ससुर बिसराम अपने पुत्र के गैरहाजिरी में देह भोग करने के लालसा से विमली का गौना कराकर ले आता है। वह अनेक बार विमली को वश में करने का प्रयास करता है। शिवमूर्ति ने विमली द्वारा अपने ससुर का प्रतिरोध करने का बड़ा ही प्रभावशाली चित्रण किया है –

> दोनों पैर सिकोड़कर ऐसा सधा बार किया छाती पर कि बिसराम उतने दूर जा गिरा खटिया से। तब से छाती और सिने में भयानक दर्द। (शिवमूर्ति: 2022:109)

विमली स्वंय की रक्षा तो करती है, लेकिन जब ससुर धोखा से धर्म का सहारा लेकर विमली को बेसुधकर उसके साथ अन्याय करता है तब विमली सोचती है –

> धोखा । छल । कहाँ-कहाँ से किन-किन खतरों से बचाती आई थी वह परायी अमानत। कितने बीहड़ ? कितने जंगल? कितने जानवर? कितने

> शिकारी। और मुकाम तक सुरक्षित पहुँचकर भी लूट गयी वह। मेंड़ ही खेत खा गयी छल से! ऐसी बेहोश कर देनेवाली नींद आई कैसे? उसकी खुद समझ में नहीं आ रहा है। (शिवमूर्ति: 2022:116)

विमली अपने ही ससुर द्वारा छली जाती है। और इसका जवाब देने के लिए वह मिट्टी की तेल की बोतल लेकर बिसराम की खाट की ओर जाती है लेकिन बिसराम पहले ही वहाँ से भाग जाता है। बिसराम विमली के चरित्र पर दाग लगाता है और प्रमाण के अभाव में तथा पंचायत की सहायता से स्वयं को बचा लेता है और विमली को पंचायत द्वारा कलछुल से दागने की सजा सुनाई जाती है, और विमली को दागने का कार्य दोषी बिसराम को दिया जाता है। विमली की चीख को न ही कोई वहाँ सुनता है और न ही उसके बातों पर कोई विश्वास करता है । बिसराम चरित्रहीन है लेकिन विमली के संदर्भ में 'तिरिया चरित्र' की बात की जाती है। विमली पंचायत के सामने निर्भीक होकर सच बताती है, लेकिन पंचायत विमली को ही कसूरवार ठहराती है। सदियों से चली आ रही पंचायती राज के नाम पर स्त्रियों के शोषण को यहाँ कहानीकार ने बखूबी चित्रण किया है। पंचायत के फैसले को विमली नकारती हुई कहती है –

> मुझे पंच का फैसला मंजुर नहीं। पंच अंधा है। पंच बहरा है। पंच में भगवान का 'सत' नहीं है। मैं ऐसे फैसले पर थूकती हूँ – आ-क-थू ...! देखूँ कौन माई का लाल दगनी दागता है। (शिवमूर्ति: 2022:129)

इस कहानी की अन्य एक प्रमुख पात्र है – मनतोरिया की माई, जो विमली के साथ हो रहे अन्याय के खिलाफ आवाज उठाती है। पंच के सम्मुख बिसराम के खिलाफ अकेली ही लड़ पड़ती है, वह पंचयात के फैसले को धिक्कारती हुई कहती है –

> ई अंधेर है। दगनी दागना है तो बिसराम और बोधन चौधरी के चुतर पर दागना चाहिए।...गाँव की औरतें मुँह खोलने को तैयार हो जाएँ तो बिसराम की घटियारी के वह एक छोड़ दस 'परमान' दे सकती है। वही आदमी बेबस बेकसूर लड़की को दागेगा? और वही बोधन बड़का पग्गड़ बांधकर दगनी की सजा सुनाएंगे? यही नियाव है? ई पंचायत नियाव करने बैठी है कि अंधेर करने? (शिवमूर्ति 2022:128)

मनतोरिया की माई को पंच के सामने बोलने के कारण उस पंचायत से ही बाहर कर दिया जाता है। इस कहानी में कहानीकार शिवमूर्ति ने उन स्त्रियों की दयनीय दशा को चित्रित किया है, जो बेवजह शोषित, उत्पीड़ित होती है, वह विवश होती और यदि वह पुरुषतांत्रिक समाज के विरुद्ध आवाज उठाती है तो परिणामस्वरूप उन्हें स्वंय ही विषम परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है, वह विमली की ही तरह 'दागी' जाती है। विमली भले ही हार जाती है, लेकिन उसके प्रतिकारी रूप समाज के सम्मुख जाग्रत चेतना को दर्शाता है।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिवमूर्ति की कहानियों में ग्राम्य जीवन के यथार्थ का वर्णन बखूबी हुआ है। वे अपनी कहानियों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों की स्त्रियों के जीवन में हुए अनेक परिवर्तनों को दिखाते हैं। उनकी कहानियों की स्त्री पात्र सुरजी, विमली, सनिचरी आदि निम्नवर्ग की ग्रामीण स्त्रियाँ हैं जो पुरुष प्रधान समाज के शोषण तथा क्रूर निर्णयों का शिकार होती हैं, लेकिन वे शोषण का तीव्र विरोध करती हैं, अपनी मुक्ति के लिए, स्वतंत्रता के लिए आवाज उठाती हैं। उनमें स्वाभिमान, साहस, उद्यम की भावना विद्यमान हैं। सदियों से स्त्रियों के लिए प्रयुक्त 'तिरिया चरित्र' का प्रयोग शिवमूर्ति बिसराम नामक पुरुष पात्र के लिए करते हैं। पुरुष जब 'तिरिया-चरित्र' करता है तो वह किस सीमा तक गिर जाता है, इसका उत्कृष्ट उदाहरण बिसराम जैसा पुरुष है। 'सिरी उपमा जोग' नामक कहानी में लालू की माँ शारीरिक और मानसिक रूप से शोषित होती है, लेकिन वह हार नहीं मानती, वह जीना चाहती है, पति के छोड़ जाने के बावजूद अपने बेटे को पढ़ा-लिखाकर अफसर बनाना चाहती है। वहीं 'कसाईबाड़ा' कहानी में सनिचरी अपने अधिकारों को लेकर सजग है, जिसके चलते वह सही-गलत का निर्णय कर पाती है और प्रधान के खिलाफ अनशन करती है। अतः कहा जा सकता है कि शिवमूर्ति की कहानियाँ उन स्त्रियों का जिंदगीनामा है, जो अनपढ़, गरीब, शोषित तथा उपेक्षित वर्गों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

ग्रंथसूची :

शिवमूर्ति. केशर कस्तुरी. तीसरा संस्करण. नई दिल्लीराजकमल प्रकाशन :, 2022.

संपर्क-सूत्र :

शोधार्थी, हिन्दी विभाग

गौहाटी विश्वविद्यालय

Priyasahu0111@gmail.com

चलभाष : 7002874548

शोध-चिंतन पत्रिका: विद्वानों द्वारा पुनरीक्षित ई शोध पत्रिका

अंक:7; जुलाई-दिसंबर, 2023; पृष्ठ संख्या : 73-81

भारत में महिला आंदोलन की भूमिका

रूबी मणि दास

शोध-सार :

देश को आजादी मिलने से पहले भारत में महिलाओं से संबंधित कई समस्याएँ एवं चुनौतियाँ थीं। पुरुष प्रभुत्व के प्रसार के साथ महिलाओं के जीवन पर कई तरह की बाधाएँ लगाई गयीं, जैसे-शिक्षा प्राप्त करने में बाधा, रोजगार सम्बन्धी बाधा, जबरन बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, सती प्रथा आदि । देश की स्वतंत्रता के पहले महिलाओं की स्थिति मुख्य रूप से उनका पालन-पोषण उनके परिवार के पुरुष तथा उस समाज पर निर्भर था, जिसमें वे रहती थीं। देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत में महिलाओं से सम्बंधित विभिन्न आंदोलन हुए। महिलाओं की स्थिति सुधार में इन आंदोलनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बीज शब्द- *स्वतंत्रता, महिला, आंदोलन , अधिकार*

प्रस्तावना :

भारत में महिलाओं की स्थिति विविध कालों में भिन्न-भिन्न रही । विविध वर्ग, धर्म और नृजातीय समूहों में महिलाओं की स्थिति अलग-अलग थी । ऋगवेद कालीन भारत में महिलाओं का स्थान समाज में सम्मानजनक था । लेकिन उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति में धीरे-धीरे परिवर्तन आने लगा । मध्यकाल में भारत में हुए इस्लामी आक्रमण तथा इस्लामी प्रभाव के कारण हिंदुओं में बाल-विवाह और पर्दा-प्रथा का प्रचलन हुआ । महिलाओं का अपमान किया जाने लगा । उन्नीसवीं सदी में महिलाओं से सम्बंधित बहुत सी सामाजिक बुराईयाँ जैसे- सती प्रथा, बहु विवाह, बाल-विवाह, विधवा पुर्नविवाह पर निषेध , कन्या संतान की हत्या आदि ने समाज में स्थान बना लिया। उन्नीसवीं सदी में ब्रिटिश शासन काल के दौरान अंग्रेजी शिक्षा तथा ईसाई धर्म और मिशनरी क्रिया-कलापों के प्रसार के फल स्वरूप सामाजिक परिवर्तन और धार्मिक सुधारों के लिए बहुत से

आंदोलन हुए, विविध संगठनों का जन्म हुआ । इन आंदोलनों का उद्देश्य जाति सम्बंधी विवादों का हल, महिलाओं की मान प्रतिष्ठा में वृद्धि, महिला शिक्षा के लिए प्रोत्साहन, विविध समुदायों में फैली सामाजिक बुराईयों को दूर करना था । उन्नीसवीं सदी के प्रथम चतुर्थांश से ही सामाजिक सुधार आंदोलनों की पहल राजा राममोहन राय ने की । उन्होंने सामाजिक रूढ़ियों का विरोध किया । सामाजिक सुधार आंदोलनों के फलस्वरूप विविध महिला संगठन और संस्थानों का आर्विभाव हुआ । इन संगठनों और संस्थानों के द्वारा उन महत्वपूर्ण समस्याओं पर ध्यान दिया गया, जिनके द्वारा समाज में महिलाओं की स्थिति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है । ये आंदोलन पुरुषों द्वारा आगे बढ़ाया गया और इनका प्रारम्भ महानगरों से हुआ । इन संगठनों में ब्रह्म समाज, आर्य समाज और प्रार्थना समाज का नाम लिया जा सकता है । ब्रह्म समाज की स्थापना सन् 1825 ई. में राजा राममोहन राय ने की थी, जिसका उद्देश्य महिलाओं के विरूद्ध प्रतिबंधों और पूर्वाग्रहों को दूर करना था । महिलाओं की शिक्षा को महिलाओं की स्थिति सुधारने के लिए एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा गया । महिलाओं की शिक्षा के लिए सरकारी समर्थन माँगा गया । आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानंद सरस्वती ने सन् 1875 ई. में की थी । आर्य समाज एक धार्मिक पुनर्जागरणवादी आंदोलन था । आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य जाति प्रथा में सुधार, पुरूष और महिला दोनों के लिए आवश्यक शिक्षा, कानूनी व्यवस्था के जरिए बाल विवाह का निषेध, विधवा पुर्नविवाह, हिंदु धार्मिक कट्टरता, मूर्ति पूजा आदि का अस्वीकार करना था। सन् 1867 ई. में प्रार्थना समाज की स्थापना हुई, जिसके संस्थापक आत्माराम पांडुरंग थे । प्रार्थना समाज का भी उद्देश्य समाज सुधार ही था । इसी तरह विभिन्न समाज सुधारकों के द्वारा महिलाओं से जुड़े समस्याओं को सामाजिक समस्या के रूप में देखा गया और उन्हें दूर करने का प्रयास किया गया ।

विश्लेषण :

विविध संगठनों के द्वारा महिलाओं से सम्बंधित समस्याओं को तो दूर करने का प्रयास किया गया ही, लेकिन महिलाओं ने खुद अपनी स्थिति सुधारने के लिए, समाज में अपना अस्तित्व बनाने

के लिए, पुरुषों के साथ समान रूप में चलने के लिए काफी लड़ाई लड़ी । महिलाओं को जागरुक करने के लिए तथा अपने अधिकारों के लिए लड़ने और अपने उपर हो रहे दमन, अत्याचार का विरोध करने के लिए विविध महिला संगठनों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई । बीसवीं सदी के प्रारम्भ में अनेक महिला संस्थाओं की स्थापना की गई । सन् 1917 ई. में मारग्रेट कजंस, एक आयरिश और भारतीय राष्ट्रवादी ने 'विमेन्स इण्डिया एसोसियेशन' का गठन किया । सन् 1926 ई. में 'नेशनल काउंसिल ऑफ इण्डियन विमेन' और सन् 1927 में 'अखिल भारतिय महिला परिषद' का गठन हुआ । स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान महिला अधिकार और समानता के लिए संघर्ष को एक अभिन्न अंग के रूप में देखा गया । देश के स्वतंत्रता संग्राम में महिलाओं ने अनेक स्तरों पर अपनी भागीदारी निभाई थी और वे महिला अधिकारों के मुद्दों के प्रति भी सक्रिय थी । महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की बड़ी संख्या में सम्मिलित होने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी । महात्मा गांधी ने तीस के दशक के मध्य में महिलाओं और आजादी के लिए बहादुरी से लड़ने वाली योद्धा मृदुला साराभाई से कहा था कि –

> मैंने भारतीय महिलाओं को रसोईघर से बाहर लाने का कार्य किया है;
>
> अब आपको उन्हें वापस लौटने से रोकने का काम करना है । (चंद्र 2017:653)

राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं के भाग लेने से अनेको पुरानी पंरम्पराओं और रीति-रिवाजों को तोड़ने में सहायता प्राप्त हुई । साथ-साथ महिला संस्थानों ने सामाजिक और वैधानिक असमर्थताओं को दूर करने के लिए आवाज उठाई । सन् 1947 ई. में जब अंग्रेज सरकार से देश मुक्त हुआ उसके बाद दो दशकों में महिलाओं ने कई उल्लेखनीय कदम उठाए । देश में विभाजन व साम्प्रदायिक दंगों के साथ कत्ल, लूटमार व बलात्कार जैसी घटनाएँ होने लगी । कई महिलाओं ने शरणार्थियों के लिए व्यवस्थाएँ जुटाई । दक्षिण भारत के तेंलगाना क्षेत्र में वामपंथी दलों ने सम्पूर्ण आर्थिक-सामाजिक आजादी के लिए क्रांति की आग भड़काई । सन् 1948 ई. में भारत सरकार के द्वारा तेंलगाना में सेना भेजी गयी । इस आंदोलन में हजारों साधारण महिलाओं ने सशस्त्र सैन्य बल

का सामना किया । आंध्र महिला सभा, आंध्र युवती मण्डल व महिला संघम के तहत महिला शक्ति ने यह लड़ाई लड़ी । तेलंगाना आंदोलन में महिला संघम की कुल सदस्यता चालीस हजार से ऊपर थी । कुल मिलाकर तेलंगाना आंदोलन में महिलाओं की भूमिका उल्लेखनीय थी । सन् 1950 ई. में गांधीवादियों के द्वारा भूदान आंदोलन छेड़ा गया । इसका उद्देश्य था जमीदारों द्वारा जमीन का दान व उचित वितरण करना । उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश व अन्य प्रांतों में भूदान का काम चला, जिसमें गांधीवादी महिलाओं ने अहम भूमिका निभाई । सन् 1947 ई. के बाद कुछ सरकारी कार्यक्रम खास तौर पर महिलाओं के कल्याण के लिए बनाए गए थे, लेकिन उसमें कुछ मूलभूत कमियाँ होने के कारण सरकार महिलाओं की मूलभूत आवश्यकताओं को समझ नहीं पायी । देखते ही देखते आजादी के बाद के दशकों में महिलाओं की स्थिति सुधरने के बजाय और अधिक बिगड़ने लगी, महिला संगठन निष्क्रिय बन गए और स्वतंत्रता पूर्व काल में दिखाया गया उत्साह भी धीरे-धीरे समाप्त हो गया। 'दीप्ति प्रिया महरोत्रा' ने अपनी पुस्तक 'भारतीय महिला आंदोलन: कल आज और कल' में कहा है कि –

> सरकार आम इंसान के सपनों को साकार नहीं कर पा रही है । गरीब दलित मजदूर महिलाओं की स्थिति में यदि कोई परिवर्तन हुआ तो केवल यह कि उनकी गरीबी व बेहाली और बढ़ गयी । (महरोत्रा 2001:55)

1970 के दशक का उतरार्द्ध और सन् 1980 ई. का दशक महिला संघर्ष के पुनरुत्थान और महिलाओं के नवीन समूहों और महिला संगठनों के आर्विभाव के दशक माने गए । महिलाओं ने तरह-तरह के मुद्दे उठाए । उनमें से कुछ-कुछ मुद्दे नए थे तो कुछ पुराने । एक नया रूप लेकर महिला आंदोलन देश में नए तरीके से उभरने लगा । 'दीप्ति प्रिया महरोत्रा' ने अपनी पुस्तक 'भारतीय महिला आंदोलन: कल आज और कल' में कहा है कि -

> गहराते संकटों और बढ़ते असंतोष के परिणामस्वरूप महिला आंदोलन में एक बार फिर राजनीति से जुड़ने का उत्साह जगा । समाज सेवा के

> क्षेत्र में कई महिलाएँ व महिला संस्थाएँ सक्रिय थी ही। परंतु अपने मामलों को अधिक सशक्त आवाज से उठाने की आवश्यकता उन्हें मालूम पड़ने लगी । सरकारी योजनाओं व नीतियों के तहत भारतीय नारी की स्थिति में कोई खास सुधार नहीं आ पाया था । हाँ, स्वतंत्रता संग्राम के दौरान महिलाओं ने अपने संगठन व संघर्षों द्वारा कुछ उपलब्धियाँ हासिल की थी, जैसे शिक्षा का अधिकार, चुनावों में मतदाता होने का हक व अनेक कानूनी अधिकार । परंतु दूसरी ओर देश में अधिकांश महिलाओं की जिंदगी की असलियत थी अत्यंत गरीबी, बेरोजगारी, सामाजिक व घरेलू हिंसा, कुपोषण व रोगग्रस्तता। (महरोत्रा 2001:56)

महिलाओं द्वारा किए गए प्रमुख आंदोलन :

चिपको आंदोलन :

1970 दशक के दौरान महिलाओं द्वारा एक अनोखा आंदोलन किया गया था । वनों की कटाई के कारण हिमालय क्षेत्र में महिलाओं को आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ा जिसके परिणाम स्वरूप महिलाओं ने इसका विरोध किया । ये पेड़ों के साथ लिपट जाती थीं ताकि ठेकेदारों को उन्हें काटने से रोका जाए । यह आंदोलन चिपको आंदोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इस आंदोलन के द्वारा सरल ग्रामीण महिलाओं ने कुछ मौलिक प्रश्नों को उठाया था ।

पर्यावरण संरक्षण आंदोलन :

देश की महिलाओं ने पर्यावरण संरक्षण आंदोलन की नींव डाली । महिलाओं द्वारा अपने जंगलों की ही नहीं बल्कि जमीन की भी रक्षा की गयी । पहाड़ी इलाकों में जगह-जगह पर पत्थरों की खान खोदी जा रही थी । महिलाओं ने इसका विरोध किया और पत्थरों की खान की खुदाई बंद की ।

अप्पिको आंदोलन :

पर्यावरण संरक्षण आंदोलन से प्रेरित होकर देश के अन्य इलाकों में भी पर्यावरण संरक्षण अभियान छिड़ने लगे । ऐसा ही एक अभियान है कर्नाटक का अप्पिको आंदोलन । इस आंदोलन के द्वारा महिलाओं ने अपने सामुदायिक व पारिवारिक जीवन की रक्षा की । बड़े-बड़े बांधों के विरोध में भी संघर्ष चले, क्योंकि बड़े बांध विकास के नाम पर लाखों लोगों को विस्थापित करते हैं और पर्यावरण का विनाश करते हैं ।

शराब विरोधी आंदोलन :

महाराष्ट्र के धुलिया जिले के शहादा आदिवासी क्षेत्र में सन् 1972 में एक अलग किस्म का आंदोलन शुरु हुआ । शुरू में इसे गांधीवादी सर्वोदय कार्यकर्ता चला रहे थे और बाद में माओवादी कार्यकर्ता भी इससे जुड़े । यह आंदोलन अकाल-राहत तथा जमीन के लिए आंदोलन के रूप में आरम्भ हुआ था जिसमें भील आदिवासी महिलाओं ने काफी सक्रिय भूमिका निभाई थी । बाद में इसने जुझारू शराब विरोधी आंदोलन का रूप ले लिया । महिलाएँ शराब को पत्नी पिटाई का मुख्य कारण समझती थी, इसलिए उन्होंने पीने के अड्डों में बर्तन तोड़ डाले और सामूहिक मार्च करके उन पुरुषों को सार्वजनिक रूप से सजा दी जो अपनी पत्नियों की पिटाई करते थे । पूरे देश में सहज-सरल ग्रामीण महिलाओं ने शक्तिशाली शराब विरोधी आंदोलन चलाया,जिसके फलस्वरूप नशाबंदी की नीति अपनाई गई और शराब की बिक्री पर अंकुश लगाया गया ।

स्वायत्त महिला दल का आंदोलन :

इस आंदोलन का प्रसार सत्तर के दशक के मध्य में शहरी इलाकों में हुआ । यह आंदोलन माओवादी या नक्सलपंथी आंदोलनों से प्रभावित था ।

दहेज विरोधी आंदोलन :

अनेक महिला संगठनों और नागरिक अधिकार समूहों के द्वारा दहेज से सम्बंधित अत्याचारों के खिलाफ एक निरंतर अभियान चलाया गया । 1980 के दशक में अनेक महिलाओं तथा अन्य प्रगतिशील संगठनों ने मिलकर दिल्ली में दहेज विरोधी चेतना मार्च दल का गठन किया । अन्य बड़े-बड़े शहरों में भी विभिन्न संगठनों ने विरोध, प्रदर्शन,वाद-विवाद, नुक्कड़, नाटक, पोस्टर आदि के

जरिए दहेज से सम्बंधित अत्याचार, हत्या के विरोध अभियान चलाया । सन् 1984 ई. में दहेज निषेध अधिनियम पारित किया गया । इस अधिनियम ने दहेज में दी जानेवाली रकम को निर्धारित किया लेकिन दहेज को प्रतिबंधित नहीं किया ।

सती-विरोधी आंदोलन :

सन् 1829 ई. में सती प्रथा को कानून के माध्यम से समाप्त कर दिया गया था । देवराला, राजस्थान में सन् 1988 में किशोर विधवा रूप कंवर का अपने पति की चिता में जलने ने महिला संगठनों के विरोध को और अधिक भड़का दिया था । सरकार की विलम्बित प्रतिक्रिया के परिणाम स्वरूप आंदोलन को आधार मिला और इसने सती अधिनियम का रूप ले लिया ।

बलात्कार-विरोधी आंदोलन :

महिला संगठनों के द्वारा बलात्कार के विरोध में अनेक आंदोलन चलाये गए थे और यह आंदोलन आज भी जारी है, क्योंकि आज भी हमारे देश में नाबालिका, युवती, महिलाओं के साथ शारीरिक शोषण, बलात्कार जैसी घटनाएँ घटती रहती हैं । सन् 1983 ई. में दण्ड विधान अधिनियम पारित किया गया था, लेकिन हमारे देश में बलात्कारी को उचित सजा नहीं दी जाती ।

महिलाओं द्वारा मंहगाई के खिलाफ भी आंदोलन किया गया । मंहगाई विरोधी अभियान का सबसे सशक्त रूप महाराष्ट्र में देखने को मिला । महिलाओं ने बढ़ती मंहगाई का विरोध काफी नए और अद्‌भुद तरीकों से किया । 1990 के दशक में महिलाओं ने साम्प्रदायिकता तथा वैश्वीकरण के मुद्दों को व्यापक तंत्र के द्वारा राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तरों पर उठाया है ।

निष्कर्ष :

महिला आंदोलन सामाजिक आंदोलनों की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है । भारतीय समाज में, जाति, वर्ग, धार्मिक और नृजातीय विभेदों के आधार पर देश के विभिन्न भागों में महिलाओं के जीवन से जुड़ी समस्याओं में अंतर है । महिला आंदोलन को सामाजिक आंदोलन का एक प्रकार

इसलिए कहा गया है,क्योंकि सामाजिक आंदोलन विभिन्न विषयों पर ध्यान आकर्षित करने के लिए विरोध, मुकाबले या संघर्ष को एक माध्यम के रूप में ग्रहण करते हैं और इसका प्रयास होता है कि परम्परागत सामाजिक संरचनाओं और असमान तथा दमनकारी सामाजिक संबंधों में परिवर्तन लाया जाए । महिला आंदोलन का भी उद्देश्य महिलाओं से जुड़ी हुई विविध समस्याओं, अत्याचार, दमन, हत्या आदि का सामूहिक रूप से विरोध करना है । महिलाओं का आंदोलन एक बेहतर समाज तथा दुनिया के निर्माण के लिए है। यह आंदोलन महिलाओं के खुद के लिए तो है ही, इसके अलावा अपने परिवार, बच्चे और समुदायों के भलाई की लिए भी है । भारतीय महिला आंदोलन में दलित, श्रमिक, किसान, शहरी, ग्रामीण, मध्यम वर्गीय सभी तबकों की महिलाएँ शामिल हैं । अलग-अलग तबकों, जाति, वर्ग की महिलाओं की स्थिति में काफी अंतर है । प्रत्येक वर्ग की महिलाएँ अपने साथ खास अनुभव को लेकर आती है । एक दूसरे की स्थिति तथा संघर्ष को समझना, एकजुट होकर मोर्चे बाँधना तथा अपनी माँगों को व्यक्त करना यही है महिला आंदोलन का प्रयास और यह प्रयास समकालीन दौर में भी निरंतर चल रहा है । महिलाओं की स्थिति समस्त सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पहलू है । अत: जब तक विस्तृत और गहरे परिवर्तन नहीं हो पाते तब तक महिलाओं के लिए अपने लक्ष्य को पूरा कर अपनी स्थिति बेहतर कर पाना थोड़ा कठिन है ।

ग्रंथसूची :

महरोत्रा, दीप्ति प्रिया. भारतीय महिला आंदोलन:कल आज और कल.नई दिल्ली: सम्पूर्णा ट्रस्ट, 2001.

बिपिन चंद्र, मृदुला मुखर्जी, आदित्य मुखर्जी.आजादी के बाद भारत (1947-2007).दिल्ली: हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, 2017.

सम्पर्क सूत्र :

शोधार्थी, हिंदी विभाग

गौहाटी विश्वविद्यालय

ई-मेइल : rubimoni345@gmai। .com

चलभाष : 7637856100